श्रीहरिः

राष्ट्रीय-सन्देश

सोये हुए देशको माधव ! अब तो शीघ्र जगादे,
दमन-दासता-रोग-शोकको सत्वर मार भगादे ।
एक बार लीलास्थल अपना फिर सुखपूर्ण बनादे,
मोहन ! मुरली-तान सुनाकर हृदय-कुञ्ज गुञ्जादे ॥

रचयिता—
चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा, 'विद्यार्थी'
(विशारद) ।

'विद्यार्थी'-नवजीवन ग्रन्थ-माला पुष्प १

ओ३म्

राष्ट्रीय सन्देश।
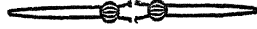
सखे ! कभी मत कर्म क्षेत्रमें पीठ बताना,
निर्बल दीन विहीन देखकर नहीं सताना।
दुखिया दीन हृदय जीवोंको गले लगाना-
दे उनमें उत्साह वीर ! नर जोति जगाना।
कहना कम, करना अधिक, पग पीछे धरना नहीं।
सम्मुख देख विपत्ति दल, हृदय जरा डरना नहीं

लेखक और प्रकाशक-
चतुर्वेदी रामचन्द्रशर्मा, 'विद्यार्थी' (विशारद)
सनावद (होलकर राज्य)

प्रथमावृत्ति १००० } संवत १९८२ विक्रमाब्द { मूल्य ॥)

—मानवीय धर्म—

[१]

स्वयं उठाते कष्ट और करते परमारथ,
होता है परमार्थ जिन्होंका सच्चा स्वारथ।
रिपुका भी कल्याण चाहते हैं नित मनमें—
होता है अभिमान नहीं किंचित भी तनमें,
प्रेम, अहिंसा सत्य व्रत, जिनका प्यारा धर्म है,
वाचक ! वेही श्रेष्ठ हैं, यही तो मानव-धर्म है ॥

परम श्रद्धास्पद

स्वर्गीय

श्री विनोद विहारी मुकुर्जी,

बी. ए., सी. टी.,

भूतपूर्व हेडमास्तर,

नार्मल स्कूल, इन्दौर

की

पवित्र स्मृतिमें
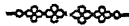
सन्देश।

—:०:—

[१]

करो सखे ! सत्कर्म, सत्य पथको स्वीकारो,
वीर व्रती नित रहो तनिक भी हृदय न हारो।
नीरव-निर्भय-शांत हृदय गंभीर बनादो,
सोई आर्य विशाल जातिको वीर ! जगादो ॥
वीरोंकी संतान अब, अपनेको पहिचान लो,
बीती बात विसारकर, शीघ्र भविष्य सँभाललो ॥

[२]

जीना है यदि तुम्हें देश-हित जीना सीखो।
मरना ही हो तुम्हें देश पर मरना सीखो।
जब तक लातें सहा करोगे काहिल बनकर
तबतक सच्चे वीर बनोगे कैसे भू पर ?
मर कर भी यदि रख सको आर्य जातिकी शानको,
तौ भी तुम स्वीकार लो, रखलो अपनी आनको ॥

[३]

धन्य वही नरसिंह देश-हित जो मरता है,
पर हितार्थ सर्वस्व समर्पण जो करता है।
दुखिया दीन-मलीन देशका दुख हरता है,
नव जीवन संचार, शौर्य्य नसमें भरता है,
डरता है किञ्चित नहीं, वह भावी तूफ़ानसे,
रखता है बस काम वह, अपने लक्ष्य महानसे।
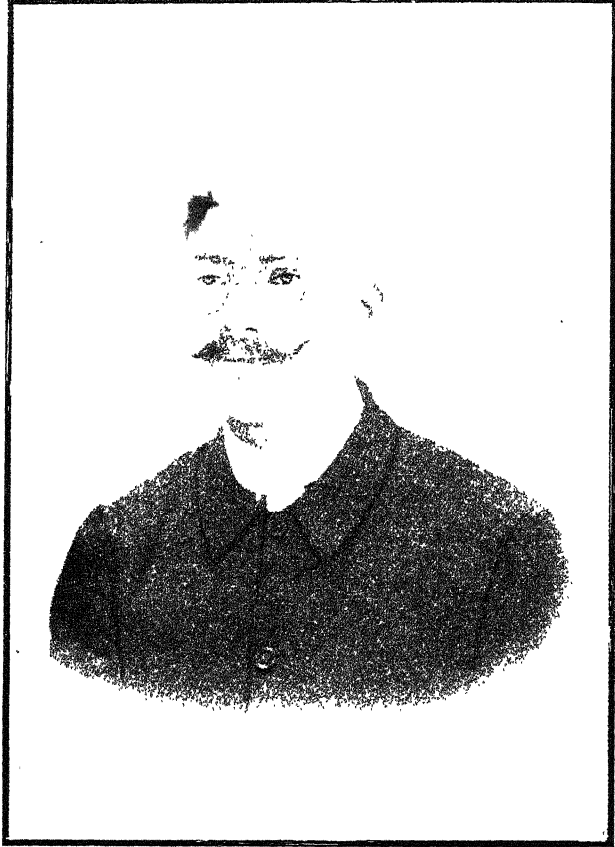
श्रीमान् सेठ श्रीदेवकृष्णजी बाहेती,
ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, खंडवा (सी. पी.)

समर्पण
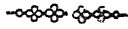
ख्यातनामा दानवीर

स्वर्गीय सेठ श्री० गोपीकृष्णजी बाहेती

(सनावद निवासी)

के

सुपुत्र

मध्यप्रान्तिक द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की

स्वागतकारिणी सभाके

सभापति

खंडवाके आनरेरी

मजिस्ट्रेट

श्री० देवकृष्णजी बाहेती

के

कर कमलोंमें

राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' के प्रति असीम अनुरागके उपलक्ष्यमें

सादर-सप्रेम

समुत्सर्गित।

मातृभूमिके प्राण, देशके भाग्य विधाता,
पुत्रवती है हुई जन्मदे जिनकी माता।
कर्मक्षेत्रमें वीर कर्म जो नित करते हैं,
दीन दुखी—सन्तप्त देशका दुख हरते हैं—
जाति—देश हित मरणमें जिन्हें अपरिमित हर्ष है
प्रेम पूर्ण अर्पण उन्हें, यह 'सन्देश' सहर्ष है।

चार शब्द ।

देशका भविष्य नौजवानोंके हाथोंमें है । कर्तव्यशील नवयुवा देशकी आशा और जीवन धन हैं । जिस देशके नवयुवक शिक्षित और सभ्य हैं उस देशका भविष्य सर्वदा उज्वलही रहता है । वर्तमान समयमें-हिन्दू जातिकी दुर्दशाका एक मात्र कारण नवयुवा पुरुषोंका अपने आदर्शसे गिर जानाही है। आजकल जितनी अकर्मण्यता, आलस्यपरता और असहिष्णुता हिन्दू नवयुवा पुरुषोंमें पाई जाती है वैसी कभी नहीं थी । कहना नहीं होगा कि हमारी इस अधोगतिका एक मात्र कारण हमारी आत्मपतनही है । हममें देश और जातिके प्रति जीवन उत्साह भरनेकी अब आदत नहीं रही । हम अपने असली स्वरूपको भी भूलगये, फिर भला किस बलपर 'उज्वल भविष्य'का स्वप्न देखें ?

प्रस्तुत पुस्तकमें नौजवानोंके लिये कुछ सामग्री रखी गई है । इस पुस्तकके सभी पद्य आधुनिक हिन्दी संसारके कई पत्र–पत्रिकाओंमें छप चुके हैं। कई मित्रोंके विशेष आग्रह और—

श्रीयुत पंडित दीन दयालजी मिश्र, रेंजर सा०, सनावद तथा—

श्रीयुत पं० बामन पांडुरंग मोघे, स० अ० सर्जन, सनावदके पवित्र उद्योगसे आज मुझे अपने प्रेमी पाठकोंके हाथोंमें इसे भेंट करनेका सुअवसर प्राप्त हुवा है।

मुझे समय २ पर मेरे स्नेहियों—(विशेषकर—स्वर्गीय क्ष० कु० श्री. प० रामस्वरूप शर्म्माजी गौड़, सम्पादक–सनातन धर्म पताका, तथा श्रीयुत पं० निरंजन लाल शर्म्माजी अजित, पूर्वसम्पादक–'वैभव,' 'वीरभूमि' आदि) ने विशेष उत्साहितकर अनुगृहीत किया है उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए मैं श्रीमान सेठ देवकृष्णजी वाहेतीका परम अनुगृह मानता हूँ जो कि उन्होंने मेरी इस न कुछ भेंटको सहर्ष स्वीकृतकर मुझे चिर कृतज्ञ किया है। इति । वन्देमातरम् ।

सनावद (होलकर स्टेट)
वसंतपंचमी सं. १९८२

चतुर्वेदी रामचन्द्रशर्मा, 'विद्यार्थी,'
पूर्व सम्पादक—'क्षत्रिय ।'

विषय-सूची।

ओ३म् हरिः

राष्ट्रीय-सन्देश

१-भारत-विनय

[१]

भारतरूप सुदामा माधव ! तेरे द्वार खड़ा है,
दीन-हीन दुखिया हतभागी ड्योढ़ी आय पड़ा है।
प्रणय-बद्धका नेह निभाना तेरा आज कहाँ है ?
उदासीनता-पूर्ण दृश्य हा ! दिखता हरे ! यहाँ है।

[२]

क्या यह तेरा नन्दनकानन भारतवर्ष नहीं है ?
क्या यह नहीं वही मन-मोहन ! सुखप्रद मातृ मही है ?
गो-कुलका अतिमोद-प्रदायक माधव ! वृन्दावन है,
लीलाधाम ! यही लीलाथल तेरा आनँदघन ! है ॥

[३]

वीणापाणि ! हरे ! मनमोहन ! आजा प्यारे ! आजा-
एक बार तो इस दुखिया पर प्रणयी-नेह निभाजा।
उजड़े हुए हृदय-उपवनको फिरसे हरे ! सजाजा,
त्यागे हुए हृदय-मानसको हे मराल ! अपनाजा ॥

[४]

नेह कला अति कुशल कन्हैया ! छैल छबीला तूं है,
नट नागर आगर नय रसका रसिक रसीला तूं है।
तूही यशुमतिका प्यारा है, वीणाधर भी तूं है,
विश्वहितैषी सुजन सहायक श्री गिरिधर भी तूं है।

[५]

किये हुए हूँ मार्ग प्रतीक्षा, तेरे ही आनेकी,
विमल लालसा लगी हुई है तेरेही पानेकी।
व्याकुल हूं अब लगन लगी है, पद-पङ्कज धोनेकी,
हाय ! अभीतक किंचित भी परवाह नहीं तूने की !

[६]

तू है निर्मल भक्तवृंदके हृदय—कुञ्जका माली,
नवल लताएँ 'नेह-कुसुम' की तूने नित प्रतिपाली।
तेरा आश्रय पाय, मंद भी होता प्रतिभाशाली,
फिर क्यों आज मुझे भूला है बतलादे वनमाली ! ॥

२—कामना

[१]

निर्बलके बल ! दीन देशका क्लेश मिटादो,
जागृति, जीवन-जोति हृदयमें अब चमकादो,
करो न्यायका उदय और अन्याय मिटादो।
मेंट अधम आतंक परस्पर प्रेम बढ़ादो।
भगवन ! भारतवर्षका, अब सत्वर उत्कर्ष हो,
विमल अलौकिक धर्मयुत, भारतीय आदर्श हो ॥

३—स्मृति

'अब याद आ रहा है, गुज़रा हुवा जमाना'

[१]

जब भारतीय रवि था उन्नत सखे ! गगनमें,
प्रतिभा चमक रही थी जब चौदहों भुवनमें ।
तन्मय थे देश-वासी उत्थानकी लगनमें,
आलस्य—दासताका था लेश भी न तनमें ॥
जिनका सुयश हृदयसे संसारने बखाना—
—वह याद आ रहा है, गुज़रा हुवा ज़माना ॥

[२]

भारतकी कीर्ति—ज्योत्स्ना जगबीच छा रही थी,
विद्या—कला—कुशलता, गौरव दिखा रही थी ।
पाश्चात्यवासियोंको मानव बना रही थी,
सोये हुओंको—'उठो' कहकर जगा रही थी ।
संसारने हृदयसे गुरुदेव ! था बखाना—
—वह याद आ रहा है गुज़रा हुआ जमाना ॥

[३]

श्रीराम-कृष्णकी थी यह जन्म भूमि प्यारी,
सोपान स्वर्गकी थी, भारत मही हमारी,
राणा प्रताप सम थे प्रिय पुत्र इस महीके,
शिवराज वीर साँगा, पृथिराज थे यहींके ।
धिक् धिक् हा ! हमने उनके आदर्शको न आना—
—अब याद आरहा है गुज़रा हुआ ज़माना ॥

[४]

सदियोंसे वर्ण चारों कर्त्तव्य खो चुके हैं,
अपनी ही ग़ल्तियोंसे ग़ारत भी हो चुके हैं ।
ईर्ष्या व क्रोध-मदसे बहुभाँति रो चुके हैं,
जगते नहीं है तिसपर इस भाँति सो चुके हैं ।
आता नहीं समझमें कैसे इन्हें जगाना—
—अब याद आरहा है गुज़रा हुवा ज़माना ॥

[५]

छाया हुवा हृदयमें आतंक है सभीके,
कर्मण्यता रहित हम हैं हो चुके कभीके ।
बातें बनाना केवल हम लोग जानते हैं,
बाबाके वाक्यको बस आधार मानते हैं ।
इस भाँति-मंदताका है भी कहो ठिकाना ?
—अब याद आ रहा है गुज़रा हुआ ज़माना ॥

[६]

दुष्काल-प्लेग-हैज़ा कोई सुने नहीं थे,
हाँ, आधुनिक दमन भी देखे नहीं कहीं थे ।
अफ़सोस ! आज जैसी देखी नहीं गुलामी,
जिससे हुई हमारी हालत महानिकामी ।
तिसपर भी हम नज़ाकत हैं चाहते बढ़ाना !
—अब याद आ रहा है गुज़रा हुवा ज़माना ।

[७]

अब तो उठो अभागो ! बेहोश सो रहे हो,
लुटवा रहे हो घरको बेमौत मर रहे हो ।
जब सर्वनाश होगा तब क्या अरे ! करोगे ?

घर सौंप दूसरोंको, परदेशको भगोगे।
सच मानलो लगेगा वहँ भी नहीं ठिकाना—
—अब याद आ रहा है० ॥

[८]

वे अफ्रिका-फिजीमें दुख बंधु पा रहे हैं।
उस भाँति केनियामें पीसे वे जा रहे हैं।
हम शौकसे यहाँ पर मौजें उड़ा रहे हैं,
वे रक्त-घूँट पीकर प्यासें बुझा रहे हैं।
इस भाँति भी जगतमें मुहँ चाहिये दिखाना?
—अब याद आ रहा है० ॥

[९]

तुम अन्नवस्त्रको भी ग़ैरोंसे मागते हो,
हर बातमें पराये मुखको हा! ताकते हो।
दृढ़ वस्तुएँ स्वदेशी तुमको नहीं सुहातीं,
निज देशकी कथाएँ तुमको नहीं हैं भातीं।
अवशिष्टमें तुम्हें अब है क्या रहा बताना—
—अब याद आ रहा है० ॥

[१०]

जो एकदिन जगतमें शिर मौर हो रहे थे,
ग़ैरोंकी अर्ज़ियोंपर जो ग़ौरकर रहे थे।
परदेशियाको घरमें निज ठौर दे रहे थे।
पड़ मूर्खताके वशमें आफ़त वे ले रहे थे।
उनको 'गुलाम' जगमें था एक दिन कहाना।
—अब याद आ रहा है० ॥

[११]

जीता वही पुरुष है जो मर्द है धरा पर,
नामर्द भीरु नरका क्या काम है यहाँपर ।
स्वाधीन है वही बस संसारमें अमर है,
आधीन जो पराया, होता कहीं अमर है ?
इसके लिए यही बस, पानीमें डूब जाना ।
—अब याद आ रहा है ० ॥

[१२]

निज जन्म-भूमिपर है जिसको न गर्व होता—
निज देश—दुर्दशापर जिनको न दर्द होता—
धिक्कार हैं हज़ारों उसका जनम वृथा है,
जीता हुवा मरा है, उसकी बुरी कथा है ।
यह धारलो हृदयमें करना न अब बहाना—
—अब याद अ रहा है ० ॥

[१३]

सर्वेश ! अब निहारो बिगडी दशा सुधारो,
बस एकबार माधव ! फिरसे यहाँ पधारो ।
वीणा ध्वनी सुनादो, सोये हृदय जगादो,
भगवान ! सब व्यथाएँ भारतकी अब मिटादो ।
दिखने लगे यहाँ फिर शुभदृश्य वह पुराना—
जो याद आ रहा है, गुज़रा हुवा ज़माना ॥

उठ २, प्यारे ! भारत वर्ष !

[१]

वीर प्रख्यात ! आदर्श विश्वके ! जगत्पूज्य ! हे भारत-वर्ष !
देखरहा क्या आज विश्वमें, उठ२ कर अपना उत्कर्ष ।
जागृत होकर पूर्व कालका करले गौरव हृदय विमर्ष;
जल्दी उठकर क़दम बढ़ादे उठ २ प्यारे भारत-वर्ष !

[२]

राम-कृष्णके देश ! स्मणकर पूर्ण प्रतिष्ठा तूं अपनी
पार्थ-पुत्र, प्रह्लाद और ध्रुवकी कर स्मर्ण वीर करनी,
वीर ! अलौकिक कृतियोंसे परिपूरित था तेरा आदर्श—
कर्मवीर ! जगके उद्धारक ! उठ २ प्यारे भारत-वर्ष ! ॥

५—हिन्दू-सङ्गठन

[१]

जिस जातिमें अनेकों प्रणवीर नर हुए हों,
निज देश-जाति हितमें बलिदान भी हुए हों ।
अत्यन्त दुर्दशा हो इस भाँति आज उसकी,
आँखोंसे जल बहेगा सहसा न हाय ! किसकी ?
आओ ज़रा बिचारें अब कौनसा यतन हो,
जिस भाँति हिन्दुओंका सच्चा सुसंगठन हो ॥

[२]

सब जातियाँ जगत की सोकरके उठ चुकी हैं,
कर्त्तव्य सोच अपना तन-मनसे जुट चुकी हैं ।

आलस्य मोह-मदमें हम हाय ! सो रहे हैं,
अपना अमूल्य जीवन इस भाँति खो रहे हैं ।
जहँ एक दूसरेके विध्वंसका यतन हो—
किस भाँति हिन्दुओंका सच्चा सुसंगठन हो ॥

[३]

संसार उठ चुका है तुम नींद ले रहे हो,
तक़दीरके भरोसे नैयाको खे रहे हो,
सर्वस्व खोचुके हो 'हिन्दू' कहाने वालो !
अब तो उठो, अभागो ! अपनी दशा सँभालो ।
अपमान भोगकर भी तुम हो रहे मगनहो,
किस भाँति अब तुम्हारा जगमें सु-संगठन हो ! ॥

[४]

बहिनों व बेटियोंकी इज्जत गवाँ रहे हो,
बेशर्म हो जगतमें मस्तक नमा रहे हो ।
इस भाँति दुर्दशामें 'हिन्दुत्व' रख सकोगे ?
रक्षा अरे ! स्वयंकी किस भाँति कर सकोगे ?
बेमौत ही जगतमें क्यों चाहते मरण हो,
हिन्दू-समाजका अब सच्चा सु-संगठन हो ॥

[५]

सद्धर्म भी अरे ! तुम अपनेसे खो चुके हो,
बदनाम भी जगतमें ज़ोरासे हो चुके हो ।
तिसपर भी सो रहे हो, जगते नहीं हो कोई,
यह नींद है तुम्हारी, अथवा बला है कोई ?

जीते हुए हमारे धन-धर्मका हरण हो,
धिक्कार जो हमारा अब भी न संगठन हो ! !

[६]

आडम्बरोंमें केवल तुम धर्म मानते हो,
बस, स्वार्थ साधनोंको सत्कर्म जानते हो।
अपनेंही बन्धुओंमें संग्राम ठानते हो,
बस निर्बलोंके आगे, भौहोंको तानते हो।
अपने ही बन्धुओंका हमसे अरे ! दलन हो,
किस भाँति फिर हमारा सच्चा सु-संगठन हो।

[७]

अपने ही बन्धुओंको कहते ' अछूत ' हम हैं,
उनको दुखी बनाकर बनते सपूत हम हैं।
सचमुचमें बन्धु-द्रोही बनते कु-पूत हम हैं,
हाँ—हाँ, मदान्धतासे बनते ' अछूत ' हम हैं।
इस भाँति जब हमारे मनका अधःपतन हो—
किस भाँति हिंदुओंका सच्चा सु-संगठन हो॥

[८]

हमसे हुए तिरस्कृत लाखों बने इसाई,
हमसे हुए पृथक वे लाखों बने कसाई।
इससे अधिक दशा क्या होगी हा ! दुःखदाई,
अब भी उठें अभागे, जगजाँय आर्य भाई।
जब ऐक्य भावनासे उत्थानका यतन हो,
हिन्दू समाजका तब सच्चा सुसंगठन हो॥

[९]

नामर्द हो रहे हो वीरोंके पुत्र हो कर,
कायर बने हुए हो शूरोंके मित्र हो कर।
कंगाल हो रहे हो सर्वस्व–'ऐक्य'–खोकर,
फल चाखते बुरे हो, हा! 'फूट'–वृक्ष बोकर।
फिर क्यों नहीं तुम्हारा संसारमें पतन हो,
किस भाँति हिन्दुओंका सच्चा० ॥

[१०]

जिनके लिये हमेशा तुम जान दे रहे थे,
जिनके लिये हृदयमें तुम स्थान दे रह थे।
जिनकी बलाएँ अपने मस्तक पे ले रहे थे,
जिनको अभी खुशीसे सर्वस्व दे रहे थे–
दुभाग्य वश तुम्हारा उनसे महा पतन हो,
किस भाँति हिन्दुओंका सच्चा० ॥

[११]

अफ़सोस! आज वे ही धिक्कारते तुम्ह हैं,
डरपोंक भीरु कहकर फटकारते तुम्हें हैं।
काफ़िर बखान कर वे ललकारते तुम्हें हैं,
'नामर्द आर्य' कहकर धुतकारते तुम्ह हैं।
इस भाँति हाय! जिसका संसारमें पतन हो,
फिर किस प्रकार उसका सच्चा सुसंगठन हो ॥

[१२]

धिक्कार! शर्मको भी ताखोंमें रख चुके हा,
संसारकी बलाको आंखोंमें रख चुके हो।

किस भाँति लग सकेगी नैया अरे ! किनारे,
हों जब मदान्ध नाविक मतभेद दिलमें धारे ।
क्यों कर न फिर जगतमें तुम शक्तिसे निधन हो,
किस भाँति हिन्दुओंका सच्चा सुसंगठन हो ॥

[१३]

निज देशके पतनका सब पाप है तुम्हीं पर,
संसारके दुखोंका अधिकार है तुम्ही पर ।
सब भाँति मिट चुकोगे फिर ख़ाक तुम करोग ?
मुख, हिन्दुओ ! जगतको कैसे दिखा सकोगे ?
अब तो वही तुम्हारा संसारमें यतन हो,
जिससे अमर तुम्हारा सच्चा० ॥

[१४]

इस भाँति भीरुतासे स्वाधीन हो सकोगे ?
निज मातृ भूमिको क्या दुखहीन कर सकोगे ?
कर्त्तव्यशीलता बिन कुछ भी न कर सकोगे,
बात बना २ कर मुहँ जोर बन सकोगे ।
अब भी अरे ! जगतम क्या चाहते पतन हो ?
क्यों कर न फिर जगतमें करते स्व-संगठन हो ? ॥

[१५]

यदि मातृ भूमिका तुम कल्याण चाहते हो–
यदि आर्य जातिका तुम 'उत्थान' चाहते हो–
यदि पूर्व सा जगतमें सम्मान चाहते हो–
यदि जातिको बनाना विद्वान चाहते हो–

तो शीघ्र ही हमारा यह पूर्ण सत्यप्रण हो,
हिन्दू समाजका अब सच्चा सुसंगठन हो ॥

[१६]

जगमें स्वराज्यके हम हक़दार हो सकेंगे,
हम, देश-दुर्दशाको सच मुचमें खो सकेंगे ।
हम, राम राज्यका भी आनंद ले सकेंगे,
संसारको अनेकों आदर्श दे सकेंगे ।
सच्ची, हृदय तलीसे उत्थानकी रटन हो,
हिन्दू समाजका बस सच्चा सुसंगठन हो ॥

[१७]

निज देश-दुर्दशासे कुछ दर्दहो हृदयमें—
निज पूर्वजोंके गौरवका ध्यान हो हृदयमें—
जीवन-समरमें बढकर—'संदेश' यह सुनादो—
—"प्रिय देश—जाति हितमें प्राणोंको अब चढ़ादो"
प्रत्येक आर्य बालक नर जातिमें रतन हो,
हिन्दू समाजका अब सच्चा सु-संगठन हो ॥

[१८]

भगवान ! वह **प्रतिज्ञा** तुम पूर्ण कब करोगे ?
इस मातृभूमिका दुख तुम नाथ ! कब हरोगे ?

---

१ यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।
परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृतां ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।

—श्रीमद्भगवद्गीता ।

वीणा–ध्वनी गुँजादो, आओ हमें जगादो,
गीता–'सँदेश' मोहन ! फिरसे हरे ! सुनादो ॥
निज देश हित हमारा उत्सर्ग श्रीश ! तन हो ।
हिन्दू समाजका अब सच्चा सुसंगठन हो ॥

६—सङ्गठन

[१]

उठो आर्य गण ! कर्म क्षेत्रमें सत्वर आओ,
जगतीतल पर कर्मवीरता कुछ दिखलाओ।
खोया अपना स्वत्व उसे फिर शीघ्र कमाओ,
जगपर अपनी ध्वजा वीरगण ! फिर फहराओ ।
देख तुम्हारी वीरता, मान शत्रुओंका मुरै,
शीश तुम्हारा विश्वमें, जगदीश्वर ऊंचा करै ॥

[२]

जिन्हें आज तक बन्धु-सहोदर मान रहे थे,
जिनके हितके लिये, प्राण कर दान रहे थे ।
जिनके संकट समय सहायक बने रहे थ;
दे उनको पक्वान्न स्वयं खा चने रहे थे ॥
वेही आज कृतघ्न बन, लाज तुम्हारी ले रहे,
बहिन-बेटियोंका अरे ! धर्म हरण हैं कर रहे ॥

[३]

जड़ताका प्रतिकार तुम्हें अब करना होगा,
दिखला अपना शौर्य, शत्रुभ्रम हरना होगा,

किन्तु ठहरना ज़रा, याद यह रखना मनमें,
करना हिंसा लेश न जबलों दम हो तन में।
आत्म शक्तिसे वीरगण! करो सर्वदा सामना,
सच्चे दिलसे शत्रुकी करना मंगल-कामना ॥

[४]

उठो हिन्दुओ! शीघ्र संगठन अब कर डालो,
मनका सारा मैल प्रेमजलसे धोडालो।
रखो जाति अभिमान, ऐक्यताको अपनालो,
बिछुड़े जो हों उन्हें, शीघ्र अपनेमें मिलालो।
उत्थान करो संसारमें, उठो आर्य! हो एकमन,
करो विश्वम त्रटि रहित, सच्चा हिन्दू-संगठन ॥

[५]

नीच-ऊँचके भाव हृदयसे शीघ्र हटा दो,
गिरे हुओं को लगा हृदयसे शीघ्र उठा दो।
नीच ऊँचके भाव, मार्गके विघ्न बने थे,
स्वयं तुम्हारे बन्धु, तुम्हारे शत्रु बने थे ॥
देखो उनकी शक्तिसे कैसी जय होगी तुम्हें,
क्या मज़ाल जो शत्रुदल आँख उठा देखे हमें!

[६]

अपना जो अस्तित्व विश्वमें रखना चाहो—
अपना जो उत्थान विश्वमें करना चाहो—
हिन्दी-हिन्दू-ध्वनी, विश्वमें भरना चाहो,
दास्य-श्रृंखला तोड़, स्वावलम्बन जो चाहो,
उठो आर्यगण! वेगही अर्पण कर तन-मन धन,
शीघ्र करो संसारमें, अभेद हिन्दू—संगठन।

७–सावधान

[१]

साधन हो हरि कृपा, ध्येय हो देशोन्नतिका,
वह्नि समर्पण कर देना बस दुर्मद मतिका ।
धारण करना धर्म सु-वैदिक निर्भय रहना,
नहीं एक भी शब्द निरर्थक मुँहसे कहना ।
वीर ! देशहित हर्षसे, तन-मन-संपति वार दो,
'सावधान' कर देश को, बस बेड़ा कर पार दो ॥

८–नवयुगका सन्देश

[१]

उठो शीघ्र आर्यगण ! धर्मका प्रचार करो,
सुखप्रद काल अब शीघ्र आनेवाला है ।
कपटी, कुटिल, धूर्त्त-श्वपच पाखंडियोंका,
भंडा फाड़ विश्वमें अवश्य होनेवाला है ।
हागा भाग्य उदय प्रवासी देशबन्धुओंका,
दलितोंका भाग्य भी पलटनेही वाला है ।
होवेगा स्वतंत्र हिंद त्याग पराधीनताको,
सुखद स्वराज्य रामराज्य होनेवाला है ॥

[२]

त्यागो भेद-भावनाएँ, प्रेमका प्रचार करो,
क्रूरता दरिद्रताका अंत होनेवाला है ।
जीवन जगादो देशबन्धुओंमें एक बार,
'विश्वगुरु' पद हिंद फिर पानेवाला है ।

राम-कृष्ण शिवाजी, प्रताप सम शूर वीर,
वीरोंका समूह फिर जन्म लेनेवाला है ।
दीखेंगे अनेक कर्मवीर तुम्हें देशपर,
सुखद स्वराज्य रामराज्य होनेवाला है ।

[३]

देगी न दिखाई एक विधवा व्यथित तुम्हें,
बाल-वृद्ध व्याहोंका भी अन्त होनेवाला है ।
चलित कुरीतियोंका नाम भी रहेगा नहीं,
वैदिक प्रथाओंका उदय होनेवाला है ।
हिन्द बीच ' हिन्दी—हिन्दूधर्म 'का निनाद होगा,
ऐरों गैरों मतोंका विलोप होनेवाला है ।
उड़ेगी पताका विश्व-बीच आर्यधर्म हीकी,
सुखद स्वराज्य रामराज्य होनेवाला है ।

९—विशुद्ध विचार

[१]

सुपथ गहेंगे और कुपथ तजेंगे सदा
दीन-दुखियोंके दुख दारिद्र नसावेंगे ।
कल्पना करेंगे वही—धर्म परिपूर्ण होगी,
पथ-भ्रष्ट मानवों को पंथ दरसावेंगे ।
होंगे किन्ही कारणोंसे जीवन विहीन उन्हें,
देके उत्साह नव जीवन जगावेंगे ।
बनेंगे स्वदेश-भक्त, और हरिभक्ति युक्त
विश्वके हितार्थ निज जीवन बितावेंगे ॥

१०-सखे !

आत्म-अनुकूल निजजीवन व्यतीत करो,
पंथमें कुपंथियोंको कंटक जमाने दो।
डटे रहो ध्येयपर, मरो नय-नेहपर,
अधम अधर्मियोंको कुयश कमाने दो।
बुद्धिके विहीन वीर पामर-निरंकुशोंको,
दीन हीन निर्बलोंमें शूरता दिखाने दो।
मिटेंगी विपत्तिया अवश्य ही तुम्हारे द्वारा,
कर्मक्षेत्रबीच ज़रा पौरुष जगाने दो॥

११-हिन्दुओंसे—

[१]

जिस ओर देखते हैं हल्ला मचा यही है,
'हिन्दू पिटे अनेकों'-सच बात बस यही है।
क्या आर्यजाति पत्थर, सचमुचमें हो रही है।
जिसको तनिक हृदयमें लज्जा अरे! नहीं है।
मुर्दार हो रहे हो, मर्दानगी सँभालो,
पिटते रहोगे कबतक 'हिन्दू' कहाने वालो!॥

[२]

करना न जानते हो बकनाही जानते हो,
अपनेको ऐंठ कर गुरु घंटाल मानते हो।
अफ़सोस! मंदतासे जाते अरे! जहाँ हो-
खाते हो लात घूंसे, नामर्द! तुम तहाँ हो।
पक्के अफीमची हो, कुछ होशतो संभालो,
पिटते रहोगे कबतक 'हिन्दू' कहाने वालो!॥

[३]

हररोज़ मूर्खताका तुम पाठ पढ़ रहे हो,
बकवाद पागलोंसा हररोज़ कर रहे हो ।
घरभेद भावनासे हररोज़ भर रहे हो,
संग्राम यादवोंसा कर रोज़ मर रहे हो ।
पत्थर बने हुए हो पुरुषार्थ तो सँभालो
ठुकते रहोगे कबतक हिन्दू० ॥

[४]

आश्चर्य ! इस तरह तुम हतभाग्य जी रहे हो,
सदियोंसे इस जगतमें भोंदू बने हुए हो ।
जगते हुए गज़बकी तुम नींद सो रहे हो—
धन—धर्म हाय ! अपना सर्वस्व खो रहे हो ।
हतभागियो ! उठो अब कुछ होश तो सँभालो ।
पिटते रहोगे कबतक 'हिन्दू' कहानेवालो ! ॥

[५]

अफ़सोस ! एक मुट्ठी दुश्मन तुम्हें हरादें,
गर्दन पकड़ तुम्हारी हा ! चित्तकर दिखादें ।
ऊपरसे चार घूंसे तुमपर अरे ! जमादें ।
बकरी औ भेड़ अपने घरमें तुम्हें बनादें ॥
कुछ शर्म भी तुम्हें है ? अपनेको तुम सँभालो,
पिटते रहोगे कबतक० ? ॥

[६]

संतान रामकी तुम अपनेको मानते हो ?
क्या खून पूर्वजोंका अपनेमें जानते हो ?

सचमुचमें आर्य योधा अपनेको मानते हो ?
अपने ही बन्धुओंपर जो तीर तानते हो ! !
कुछ तो अरे विचारो, अपनत्वको सँभालो।
पिटते रहोगे कबतक 'हिन्दू' कहानेवालो ! ॥

[७]

रक्षा, अरे ! स्वयंकी किंचित न कर रहे हो,
हर रोज़ शत्रुओंसे बेमौत मर रहे हो।
फिर और की मदद तुम क्या ख़ाक कर सकोगे ?
ले संग दूसरों को तुम हाय ! मर सकोगे।
पुरुषार्थ तो दिखादो, हिन्दुत्वको सँभालो—
पिटते रहोगे कबतक 'हिन्दू' कहानेवालो ! !

[८]

बहिनें अरे ! तुम्हारी पथ भ्रष्ट हो रही हैं।
हा ! बेटियाँ तुम्हारी हो भ्रष्ट रो रही हैं।
हा ! देवियाँ तुम्हारी नितधर्म खो रही हैं।
हर रोज़ हाय ! कमको धिक्कार दे रही हैं।
अपनेको आतताई इस भांति मत बनालो—
पिटते रहोगे कबतक० ? ॥

[९]

उस मर्द का जगतमें जीना ही क्या भला है
कुत्तों की भाँति हर दम रहता अरे ! पला है।
नामर्द भीरु क़ाहिल शैतान है—बला है
उसका कहीं जहाँ में कुछ नामभी चला है ?

इससे तो अब हलाहल बस एक बार खालो,
पिटते रहोगे कबतक 'हिंदू' कहाने वालो !

[१०]

कवसे तुम्हें जगाया फिरभी हा ! सो रहे हो
धिक्कार ! जो नपुंसक निर्लज्ज हो रहे हो।
हा ! कर्मवीर नेता भी हार खा रहे हैं—
यों देख कर तुम्हें वे अति दुःख पा रहे हैं।
जगते नहीं हो तोभी अबभी तो नेत्र खोलो।
पिटते रहोगे कबतक० ? ॥

[११]

संसार मे अगर तुम सम्मान चाहते हो,
हाँ; आर्य जाति का तुम उत्थान चाहते हो।
बहिनों व बेटियोंका कल्याण चाहते हो,
निजदेशको बनाना स्वाधीन चाहते हो—
तो अब करो न देरी बस संगठन बनालो।
पिटते रहोगे कबतक० ? ॥

[१२]

प्रतिकार शत्रुओंका करके उन्हें बतादो,
हम भी हैं वीर योधा कर वीरता दिखादो।
उनको मनुष्यता भी संसारमें सिखादो,
अंतिम ' सँदेश ' अपना कानोंमें तुम सुनादो—
सीधे रहो न या फिर वह रास्ता सँभालो,
पिटते रहोगे कबतक० ? ॥

[१३]

यह हिन्द है हमारा हम हिंदके निवासी,
तुम हो अरे ! कहाँके पाश्चात्यके निवासी।
तुम पात्र हो दयाके ऐ ज़ालिमो ! हमारे,
किंचित नहीं हैं हमपर, अहसान भी तुम्हारे ।
रहते हो तुम रहो या वह रास्ता सँभालो ।
पिटते रहोगे कबतक 'हिन्दू' कहानेवालो ? ॥

१२–भारतवासियो !

[१]

अरुणिमा छाई पूरब दिशा,
मिट गया सारा अंधःकार ।
उठो अब तो भारत संतान ।
कमर कस हो जाओ तैयार ।
जन्म भूमि पाती है क्लेश
करेंगे हम इसका उद्धार ।
अन्यथा निश्चय मानो वीर !
हमारा जीना है धिक्कार !

[२]

भोगें अंग हमारे क्लेश,
लेयँ हम मंद सुखोंकी नींद ।
नरता–या पशुता है कहो ?
त्यागदो अबतो प्यारे ! नींद ।

भारतकी लाखों संतान,
भूँखसे तड़फ़ २ मर रहीं ।
हैं ये ‘ भारतीय ’ हा ! दैव !
इसीसे रक्षक कोई नहीं । ’

[३]

केनियाँ—फिज़ी आदिकी दशा,
देखकर किसे न होगा क्लेश ।
प्रवासी भारतीय संतान,
व्यथित हैं भू पर छोड़ स्वदेश ॥
दिनों दिन बढ़ते जाते दुःख,
न्यूनता दिखती नेक नहीं ।
ज़रा सोचो तो मनमें वीर !
दासतामें भी सुख है कहीं ?

[४]

रामकृष्णकी प्रियसंतान,
गवाँ निज स्वत्व विश्वमें आज ।—
खा रहीं दर २ धक्के हाय !
कलंकित होता आर्य-समाज ।
हुए जिसमें प्रणवीर प्रताप,
महाराणा साँगा शिवराज ।
विख्यात अलौकिक है पुरुषार्थ,
जिन्होंका पृथ्वी तल पर आज ।

[५]

प्राण भी कर डाले बलिदान,
किन्तु प्रणसे पीछे न हटे ।
जो कुछ कहा किया तत्काल,
स्वप्नमें भी वे नहीं नटे ।
हाय ! ऐसोंकी भी संतान,
कर्मसे विमुख हुई हा ! दैव !
कालगति महिमा बड़ी विचित्र,
दिखाती नूतन दृश्य सदैव ।

[६]

पहिचानों अपनेको वीर !
करो भारतका अभ्युत्थान ।
गुँजादो फिरसे जगमें वीर !
वीर भारतका जय २ गान ।
बनो कर्मण्य साहसी वीर,
उठो अब धीर ! आर्य संतान ।
दिखे वह भारतीय आदर्श,
पूर्वमें जो था प्रतिभावान ॥

१३–उज्वल भविष्य

" दिखता भविष्य उज्वल भारत ! हमें तुम्हारा "

[१]

गतकाल अति समुज्वल जिसका सदा रहा हो,
सत्कीर्ति श्रोत जिसका संसारमें बहा हो ।

जिसकी उदारताका आदर्श भी महा हो,
‘ गुरुदेव ’ एक स्वरसे सबने जिसे कहा हो ।
ह वर्तमान दुर्बल दुर्भाग्यसे हमारा–
दिखता भविष्य उज्वल भारत ! हमें तुम्हारा ॥

[२]

जिसकी अमूल्य वाणी ओजस्विनी रही हो ।
जहँ श्रेष्ठ पुण्यतोया मंदाकिनी बही हो ।
जिसकी कला कुशलता त्रुटिहीन हो रही हो ।
जिसकी मिसाल जगमें अबभी नहीं कहीं हो ।
देता न आज जोभी कोई उसे सहारा–
दिखता भविष्य उज्वल भारत हमें तुम्हारा ॥

[३]

जिसकी कभी अलौकिक ध्रुव कर्मवीरता थी,
गंभीरता मनोहर सद्धर्म धीरता थी ।
सबभाँति उच्च बनकर नीचा दिखा रहाहै,
पामर निरंकुशोंसे दुख आज पा रहा ह ।
दुख पूर्ण पुत्र जिसके हैं कररहे गुजारा ।
दिखता भविष्य उज्वल भारत ! हमें तुम्हारा ॥

[४]

लूटीं विदेशियोंने बहुबार सम्पदाएँ,
शोणितसरित बहाकर दीं घोर आपदाएँ ।
वे मरगए उन्होंका अस्तित्व भी नहीं है ।
पर देश-सम्पदामें दिखती नहीं कमी है

हो वर्त्तमानमें तुम दुख पारहे अपारा-
दिखता भविष्य उज्वल० ॥

[५]

गोरी औ गज़नवी से जिसको सता चुके हैं।
नादिरसे नीच अपनी खलता बता चुके हैं।
डायरसे क्रूर शासक जिसको दुखा चुके हैं।
सुख शांतिका सरोवर जिसका सुखा चुके हैं।
वह वर्त्तमानमें हो दुखिया भले विचारा—
दिखता भविष्य उज्वल०।

[६]

कुछ काल बीतने पर जब रामराज्य होगा,
सब दुःख दूर होंगे सुख पूर्ण साज होगा।
पाकर स्वतंत्रताको सिरताज हिंद होगा,
रविका प्रकाश पाकर रिपु-ध्वांत अंत होगा।
पाता है आज जितनी विपदा स्वदेश प्यारा।
उतना भविष्य उज्वल दिखता हमें तुम्हारा ॥

[७]

सीता अरुंधतीसी देवी पतिव्रताएँ,
थीं नारियाँ अनेकों विख्यात हैं कथाएँ।
पर पुत्रियाँ उन्हींकी, पथ भ्रष्ट हो रही हैं।
स्त्रीधर्मभूल अपनी मर्याद खो रही हैं।
फिर देशमें दिखेंगी मंदोदरी सी, तारा;
दिखता भविष्य उज्वल० ॥

[८]

प्रह्लाद ध्रुव, हकीकत, अभिमन्यु भी दिखेंगे,
रणबांकुरे यशस्वी, प्रणवीर भी दिखेंगे ।
फल नीच देश द्रोही, निश्चय बुरा चखेंगे ।
इस देशको किसी दिन स्वाधीन ही लखेंगे ।
प्रत्येक पुत्रको है स्वातंत्र्य प्राणप्यारा ।
दिखता भविष्य उज्वल० ।

[९]

श्री गोखले तिलकसे निज देश प्राण प्यारे ।
शुभराष्ट्र शक्तिके फिर अवतार श्रेष्ठ धारे
निज देशमें दिखेंगे नव जोतिको जगाते ।
आलस्य–दासताको इस देशसे भगाते ।
'है जन्म–सिद्ध जिनका अधिकार राज्य प्यारा' ।
दिखता भविष्य उज्वल० ॥

[१०]

इस देशकी अनेकों अनरीतियाँ मिटेंगी ।
शासक निरंकुशोंकी दुर्नीतियाँ घटेंगी ।
लोभी वितंडियोंकी कृतियाँ सभी हटेंगी ।
शुभरामराज्यकी फिर सम्पत्तियाँ जुटेंगी ।
वैदिक स्वधर्म पर ही विश्वास है हमारा ।
दिखता भविष्य उज्वल० ॥

[११]

दुनियाँके पंथ सारे निश्चय विलीन होंगे ।
सच मुच विधर्मियोंके मुँह भी मलीन होंगे ।

विख्यात धर्म वैदिक संसारमें रहेगा।
प्रत्येक आर्य इसकी सानंद जय कहेगा।
अब तो बड़ा सहायक जगदीश है हमारा—
दिखता भविष्य उज्वल०।

[१२]

कोहाट दुर्दशाका बदला अवश्य लेंगे।
जलियान बागका फल जगदीश शीघ्र देंगे।
करके सभी रहेंगे जो कुछ भी हम कहेंगे-
निजदेश हित जियेंगे-निजदेशहित मरेंगे।
अबतो यही अटल है प्रण बंधुओ! हमारा
दिखता भविष्य०।

[१३]

प्रभुवर्य! अब हमारा, यह प्रेमपुष्प लीजे।
हम दीन आर्योंको करुणाका पात्र कीजे।
दृढ़ धैर्य और साहस पुरुषार्थ शीघ्र दीजे।
दुख देशका मिटाकर, 'शंकर' प्रदान कीजे॥
फिर एक बार जगमें चमके प्रभो! सितारा
दिखता भविष्य उज्वल०॥

१४-ऐहिन्दुओ!

ऐहिन्दुओ! चेतो उठो अबतो ज़रा,
छोड़कर आलस्य करलो संगठन।
द्वेष भावोंसे भरा घट फोड़ दो,
कर दिया इसने तुम्हारा है पतन।

बिखरी हुई अब जोड़लो सब शक्तियाँ,
अन्यथा निर्वाह जग होना कठिन।
उत्थानकी ध्वनिही गुँजाकर मत रहो-
जो कहो-करके बतादो आजदिन॥

१५-सत्याग्रहीके प्रति

[१]

जगतपिता पर रखो वीर! विश्वास हृदयसे,
आत्माके अनुकूल रहो, मत डरो प्रलयसे।
मन-वचन-कर्मसे कभी किसीका अहित न करना,
सत्य-अहिंसा क्षमा धर्ममें निश्चय धरना।
अत्याचारी जो कहीं, शूली देकर प्राण ले,
निर्भय रहना वीर! तुम, तुमको भी वह जानले॥

[२]

कर्ममार्गमें वीर! विविध बाधाएँ आएँ,
क्षण भंगुर उद्वेग, अगर तुमको दिखलाएँ।
दिखें भले बीभत्स दृश्य, विचलित मत होना,
आत्मशक्तिसे उन्हें हटाकर विजयी होना।
फुसलावे कोई तुम्हें, फँस मत जाना तुम कभी,
जहाँ फँसे तुम जालमें, फिर न मुक्त होगे कभी॥

[३]

लालच दें या पैर पड़ें माया दिखलावें,
नीच कर्मसे क्रोध तुम्हारे मनमें लावें।
मारें तुमको शस्त्र, शत्रु मन मानी करलें,
करें विविध उत्पात, विश्वको सर पर धरलें।

सावधान रहना सदा, मन कुंठित करना नहीं।
वीर ! किसीके साम्हने अपना दुख रोना नहीं।

[४]

साक्षी है इतिहास पूज्य पूर्वज पुरुषोंका,
हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद और ध्रुवसे वच्चोंका।
सत्याग्रहसे कभी पराजय नहीं हुई है,
हैं अनेक दृष्टांत इसीसे विजय हुई है।
विश्व प्रेमसे ईश भी, हैं प्रसन्न रहते सदा,
लोक और परलोकमें अमरकीर्ति होती सदा॥

[५]

प्रेम-पात्र है वही ईशका जगतीतलमें।
हो स्वतंत्र जो करै कर्म चलकर सत्पथमें।
अपने सम समझे दुनियाँके सब प्राणीको,
सभी सिद्धियाँ सहज सिद्ध हैं, उस ज्ञानीको।
सपनेमें भी शत्रुका अहित न करना तुम कभी,
बदला अत्याचारका हिंसासे मत लो कभी।

[६]

जन्में हो तुम जहाँ, वहाँ की प्रथा न त्यागो,
मातृभूमिके लिये यही ईश्वरसे मांगो—
"जगत्पिता ! स्वाधीन रहे यह जननी मेरी
हों न कभी परतंत्र प्रभो ! संतानें तेरी"
तन मन धन सर्वस्वको, अर्पण करदें देशहित,
करैं परस्पर प्रेम हम ध्यान धरें तव एकचित।

१६ अध्यापकोंके प्रति

[१]

नवकुसुमोंकी सौरभको महँकाने वाले !
हृदय–भवनमें उच्च भावके भरनेवाले !
भूलोंको कर्त्तव्य मार्ग पर करने वाले !
वज्र हृदयको तूल–तुल्य कर देने वाले !
अखिल विश्वके पूज्यवर अध्यापक गुरु आप हैं,
जहाँ आपकी हो कृपा, मिटते सब संताप हैं।

[२]

क्या राजनीति क्या धर्मनीति सबहीमें देखा,
स्वयं ईशसे सम्मानित जगमें है लेखा।
संग सुदामा–लिये गये ईंधन थे लाने,
नट नागर श्रीकृष्ण जगतको यह सिख लाने।
"तन मन धनसे नित्य प्रति श्रीगुरुकी सेवा करो–
मन वांछित वर प्राप्त कर, अंधकार हियका हरो"

[३]

पाकर गुरुआदेश, रामने निर्जन बनमें,
ऋषि-पत्नीको तार, ताड़का मारी छिनमें।
दिया धनुषको तोड़, नृपनका मद हर लीन्हा
गुरुका पा आशीष सीयमन हर्षित कीन्हा।
वर्णनमें आता नहीं, वैभव गुरुजनका कभी;
करता अति संमान था, यह भारत जगमें कभी ॥

[४]

शिष्योंको ले संग वास वनमें करते थे,
नीतिधर्मयुत वीरभाव उनमें भरते थे !
करते थे व्यवहार पुत्रसा प्रिय शिष्योंसे,
हरते थे अज्ञान तिमिर उनके हृदयोंसे।
कर शारीरिक मानसिक, उन्नतियाँ उनकी सभी,
देते गुरु ! फिर आप थे स्नेह युक्त जगको कभी ॥

[५]

दशा आधुनिक देख, हृदय फटता जाता है,
गुरुवर ! क्यों सम्मान आज घटता जाता है ?
कारण क्या है आज, शिष्य भी नहिं हैं वैसे ?
भारतकी यह नाव लगेगी तट पर कैसे ?
पराधीन हैं हो रहीं, संतानें इस देशकी,
मन मानी है जा रही नौका हा ! इस देशकी।

[६]

मिटा अविद्या तिमिर हृदयमें ज्ञान जगादो।
प्रेमभावका श्रोत हृदयमें शीघ्र बहादो।
कला-कुशलता सभी गुणोंमें चतुर बनादो।
गुरुवर ! अपना दिव्यमंत्र अब हमें सुनादो।
रह भिखारी अब नहीं संतानें, इस देशकी,
शुभ स्वराज्यको प्राप्तकर, लाज रखें नर वेशकी ॥

१७-विद्यार्थियोंके प्रति*

[१]

विद्यार्थी हैं भाग्य विधाता प्रिय स्वदेशके,
विद्यार्थी हैं सदा श्रेष्ठ सर्वस्व देशके ।
चाहेंतो निज मातृभूमिको स्वर्ग बनादें ।
मचल जायँतो अधम कर्मसे नर्क बनादें ।
उत्थान–पतन संसारका, सभी तुम्हारे साथ है,
तुम साथी संसारके विश्व तुम्हारे साथ है ॥

[२]

तुम भारतके मान, देशकी आश तुम्हीं हो,
हो भविष्य हे वीर! देशके लाल तुम्हीं हो
शस्यश्यामला मातृभूमिके पुष्प तुम्हीं हो,
कई करोड़ोंके जीवन सर्वस्व तुम्हीं हो ।
देख रहे हो देशकी कैसी हालत हो रही,
देख पराश्रयमें तुम्हें भारत माता रो रही ॥

[३]

मातृभूमि है आज तुम्हारी ग्रसित रोगमें,
दास्य-पाशमें बँधी पड़ी है महाशोकमें ।
क्या नैतिक क्या शारीरिक आर्थिक धार्मिक क्या–
सभी भाँतिसे पतन हुवा है और कहें क्या ।
वैद्यराज भी आज हैं कारागृहमें जा बसे,
हाय ! किन्तु तुम मौन हो रक्षक पावें अब किसे ?

---

* यह कविता श्री गांधीजीके सन २१ में जेल जानेपर लिखी गई थी ।

[४]

चतुर वैद्यने ' असहयोग ' औषध बतलाया,
सत्य-अहिंसा-क्षमा-धर्म ' अनुपान ' सिखाया।
लगा दौड़ने खून, दवा लेते ही तनमें,
भारतमुख खिल उठा, शूरता छाई मनमें।
नौकरशाही जल उठी, असहयोगके तेज़से
स्वतंत्रताके सदनमें, वैद्य—लेगई वेगसे॥

[५]

वीरों ! करो उद्योग, रोग जड़से मिट जावे,
भारतमाका लाल क़ैदसे फिर आजावे।
तनमें मनमें भाव स्वदेशीका छा जावे,
कर्म क्षेत्रमें वीर हिन्द, विजयश्री पावे।
असहयोगके शस्त्रसे अधम दमन का नाश हो।
वीर हिंद सत्याग्रही, रणमें नहीं हताश हो।

[६]

घर २ चर्खाकात सूत तुम स्वयं बनाना,
त्याग विदेशी वस्त्र, स्वच्छ खद्दर अपनाना।
अगर सत्यही श्री गांधीको चहौ छुड़ाना,
सच्चे मनसे पूर्ण स्वदेशी ही वन जाना।
अपने पैरों बढ़चलो-खुला हुवा वह द्वार है,
ब्रह्मवाक्य सच जानना, निश्चय वेड़ा पार है।

१८-सताये हुओंसे-

[१]

ईश-सृष्टिके बीच जन्मते जितने प्राणी,
कहते 'मानव जाति-सभीमें उत्तम' ज्ञानी।
मानवको अधिकार ईशने सदृश दिये हैं,
नहीं किसीके न्यून-अधिक अधिकार किये हैं।
बलवानोंको हक्क क्या, दुःखित दीनोंको करें,
दुखिया दीन ग़रीबके, स्वत्व और सर्वस हरें।

[२]

बलवानोंको पाप पूर्ण अधिकार नहीं है,
निर्बलका अधिकार छीनना न्याय नहीं है।
किसी धर्ममें यह अनीति सम्मान्य नहीं है,
अन्यायीकी विजय, विश्वमें नहीं कहीं है।
किन्तु आज बलवान तो अति मदान्ध हैं हो रहे,
मनमाना, अधिकारका दुरुपयोग हैं कर रहे।

[३]

तुम हो मानव-जाति किन्तु अब कालगतीसे,
बने हुए हो दास जगतमें मंद मतीसे।
दास-दशामें नित्य भयंकर दुख पाते हो,
पर न ध्यान निज पतित दशापर तुम लाते हो।
दुर्गतिमें ही बीतता जन्म तुम्हारा बन्धुओ!
किस कारण निश्चेष्ट हो, चेतो! सँभलो, बंधुओ

[४]

जिनके हितके लिये प्राण कर दान रहे हो,
जिनको अपना भाग्य विधाता मान रहे हो—
चूस लिया है हाय ! उन्होंने रक्त तुम्हारा।
केवल पंजर अस्थिमात्र अब बचा तुम्हारा।
इस प्रकार दुष्कर्मसे किसी लोकमें भी तुम्हें,
मिल न सकेगी ठौर हा ! यही देख दुख है हमें।

[५]

तुममें पशुमें भेद नेकभी नहीं दिखाता,
पशुओंसे भी परे तुम्हारा कर्म लखाता।
त्यागो पशुता और पुरुषता, उरमें धारो।
छोड़ गुलामी प्रिय स्वतंत्रताको स्वीकारो।
उठो २ हे बन्धुओ ! अपना शिर ऊँचा करो,
तुम्हें देख जो हँस रहे, उनका शिर नीचा करो।

[६]

स्वतंत्रताका पाठ आज जग सीख रहा है,
सम्प्रतिमें संसार समुन्नत दीख रहा है।
अधम दशामें हाय ! तुम्ही हो आज दिखाते।
किन्तु हृदयमें नवजीवन तुम नेक न लाते।
उठो घोर निद्रा तजो, हृदय विचारो निज दशा,
शोभा देती है नहीं, तुम्हें तुम्हारी–दुर्दशा॥

[७]

ईश–दत्त अधिकार सभी तुम गवाँ चुके हो,
हो ब्रीड़ित निजशीश जगतमें नवाँ चुके हो।

विपदाओंको देख कर्मसे भाग चुके हो ।
खोकर अपना स्वत्व, 'दासता'—माँग चुके हो ।
सब कुछ तुम हो खो चुके, पास नहीं कुछ भी रहा,
बचा एक अस्तित्व है अब भी मानों तुम कहा ।

[८]

थे पूर्वज स्वाधीन वीर आदर्श तुम्हारे,
उनकी तुम संतान दास्य कर्मोंको धारे ।
जो अभिलाषी कृपाकोरकी रहे तुम्हारी,
वेही मालिक बन बैठे हैं स्वेच्छाचारी ।
कर्मक्षेत्रमें वीर हो ! प्राप्त करो स्वाधीनता,
ऐसा जीवन व्यर्थ है, शीघ्र दुराओ हीनता ॥

[९]

चर्खारूपी चक्रसुदर्शनको कर धारो,
विश्वप्रेम अरु सत्य अहिंसाको स्वीकारो ।
आत्मशक्तिकी करो साधना, श्रद्धा रखकर,
दुखसहिष्णु तुम बनो वीर ! विपदाएँ सहकर ।
निश्चय उरमें जान लो, दशा न यह रह जायगी ।
मर्यादा खोई हुई, तुम्हें पुनः मिल जायगी ॥

१९—ओ राजस्थान !

[१]

वीरव्रती ! प्रणवीर ! धीर ! परिपूरण उच्चादर्श महान,
रणस्थलीसे विमुख कहाने वाले तिलभर भी न जवान !

रखने अपनी टेक, जगतमें हर्षित करता था बलिदान-
सोया हुआ अरे ! क्यों अब तू, उठ २ प्यारे राजस्थान ! !

[२]

भेद-भावना और परस्पर, द्वेष स्वार्थको कर स्वीकार—
अकर्मण्य बन नत मस्तक हो, क्षात्रधर्मको दिया बिसार ।
जो निज देश और जातीपर, कर देताथा प्राण प्रदान,
वही मोह निद्रामें सोया, उठ २ प्यारे राजस्थान !

[३]

जहाँ अलौकिक पुरुष हुएथे, कर्मवीर प्रणवीर प्रताप,
छायरहा है वसुंधरापर जिनका अबभी विमल प्रताप ।
वही देश हा ! आज विश्वको, दिखा रहा अपना मुख म्लान,
छोड़ काहिली वीरव्रती हो, उठ २ प्यारे० ॥

[४]

साँगा-दुर्गादास, वीरवर भामा आदिक वीर महान,
विमल कीर्ति पाचुके विश्वमें, कर स्वदेशका अभ्युत्थान ।
उन्हीं सिंहनरकी संतानें, अधुनामें पाकर अपमान,
दिखा रहीं अपना मुख जगको, उठ २ प्यारे० ॥

[५]

त्याग अजाका संग वीरवर ! अपनेको सत्वर पहिचान,
देश-जाति हित अर्पण करदे, वीरव्रती अपने प्रियप्राण ।
विमल हृदयसे नीरव स्वरसे, छोड़ स्वदेशी सुंदर तान,
अमर संगठन अपना करले, उठ २ प्यारे० ॥

[६]

एक बार तू फिर बतला दे, अपना गौरव वह प्राचीन,
स्वागत तेरा करै विश्व फिर, देख अमर उत्कर्ष नवीन,

पा स्वराज्य प्रिय भारत माता, तुझे करे आशीष प्रदान,
हो विजयी तू कर्म क्षेत्रमें—उठ २ प्यारे० ॥

[७]

देख मार्ग कंटक मय मनमें, तिलभर भी मत सकुचाना,
विघ्न विपति घन पटलोंको तू कर विदीर्ण आगे आना ।
हैं अनुकूल सदा निश्चय रख, कर्मवीर ! तेरे भगवान—
अब विलम्ब मत कर तू किंचित, उठ २ प्यारे० ॥

[८]

तेरे रहते बहिन, बेटियाँ, यवनोंसे पावें अपमान,
नित्य धर्मसे पतित बने, हो व्रीड़ित हिन्दू जाति महान !
हतभागी किस मदमें भूला, आज कहाँ है तेरा ध्यान,
आर्य—जातिकी लाज बचाले, उठ २ प्यारे० ॥

२०—व्यापारियोंसे—

[१]

देशोन्नतिका है उपाय, व्यवसाय हमारा,
साधन है सर्वोच्च, दासता—नाशनहारा ।
जहाँ हुवा व्यवसाय मंद, बस पतन समझलो ।
बँधना होगा दास-पाशमें सत्य समझलो ।
व्यापारी जिस देशके, उन्नत और स्वतंत्र हैं,
वही धन्य है देश, तहँ—नर न कभी परतंत्र हैं ॥

[२]

उन्नत था व्यापार पूर्वमें खूब हमारा,
दिग—दिगंतमें चमक रहाथा हिन्द सितारा ।

करता था आश्चर्य जगत, लख कला हमारी,
शिक्षा भी तो बढ़ी हुई थी खूब हमारी।
भारतकी प्राचीनता जगतीमें विख्यात है,
ग्रीस इसीका शिष्यथा, जिसका यश भी ख्यात है।

[३]

वायुयान, जलयान सभी कुछ बने यहीं थे,
सब प्रकारके यंत्र यहीं थे, नहीं कहीं थे।
अगणित आविष्कार यहींसे प्रगट हुऐ थे,
दुनियांके व्यवसाय यहींसे टिके हुए थे!
दूध दही—घृतकी यहाँ नदियाँसी बहती रहीं।
संतानेंभी देशकी, हृष्ट पुष्ट होती रहीं॥

[४]

वही देश हा! आज भिखारी बना हुवा है,
तेजहीन—कर्तव्यहीन हो पड़ा हुवा है।
शक्तिहीन है—कलाहीन अतिदीन दुखी है।
बना हुवा परतंत्र स्वप्नमें नहीं सुखी है।
संतानें इस देशकी, दर २ धक्के खा रहीं,
फिजी—आफ्रिका देशमें अगणित क्लेश उठा रहीं।

[५]

सभी वस्तुएँ बुला रहेहैं आप विदेशी,
दिखलाता है एक नहीं सामान स्वदेशी!
कपड़ा कागज़ सुई सलाई सभी मँगाते,
किन्तु कभी क्या यह विचार मनमें भी लाते

लुटवाते हैं देश को, ईश्वरसे डरते नहीं,
देश रसातल जा रहा, किन्तु आप जगते नहीं,

[६]

स्वार्थत्याग अब करो, स्वदेशीको अपनाओ,
भारतका व्यवसाय, विश्वमें फिर चमकाओ ।
चर्खेसे अब सूत कताकर वस्त्र बुनाओ ॥
छोड़ विदेशी वस्त्र स्वदेशीही अपनाओ ॥
उत्तम २ वस्तुएँ बनवाओ निजदेशकी—
पाप पूर्ण अब मानलो सब चीजें परदेशकी ।

२१-माताओंसे-

१

माता जगकी आदि शक्ति, गौरव—गरिमा हो,
सहनशीलता—मूर्ति त्यागकी तुम प्रतिमा हो ।
वीरोंकी हो खानि, देश-दुख हरनेवालीं,
दया—प्रेम—आगार, धर्मपर मरनेवालीं ।
भारतको अभिमान है, माता-बहिनो ! आपका,
अंत शीघ्र अब कीजिये, भारतके संतापका ।

[२]

भारतकी प्राचीन प्रभा जगमें जगजावे,
गया हुआ-धन-धाम हमारा फिर मिल जावे ।
नेताओंकी कठिन तपस्या सफल कहावे ।
भारत हो स्वाधीन, दासता दूर भगावे ।
समर भूमिमें देवियो ! तुम्हें संग जब पायँगे,
निश्चय रणमें हम तभी, शीघ्र सफल हो जायँगे ।

[३]

पूर्वकालमें समय २ पर विपति दशामें,
सेवाएँ की सच्चे मनसे दुःख-दशामें ।
दिखलाता इतिहास आपकी सच्ची गाथा ।
वीरकर्मको देख नमाता जग है माथा ।
प्रेम अलौकिक आपमें, कष्ट सहन गंभीरता—
त्याग निपुण, रण वीरता, अद्भुत तुममें धीरता ॥

[४]

देख तुम्हारी बुद्धि बड़ोंके शिर झुकते थे,
रणस्थलीमें वीर धुरंधर भी डरते थे ।
दशा आधुनिक देख हमें यह चिंता होती—
माता-बहिनें आज हमारी क्योंकर सोतीं ।
उठो २ हे देवियो ! पुत्र पड़े संतापमें,
उत्साहपूर्ण उपदेश दो, महाशक्ति है आपमें ।

[५]

स्वतंत्रताका युद्ध छिड़ा है, दुनियाँ भरमें,
हिंसक योधा धरे शस्त्र हैं अपने करमें ।
हमने केवल 'क्षमा खड्ग'—स्वीकार किया है;
सत्य-अहिंसा और प्रेम पर ध्यान दिया है ।
बनो सहायक समरमें करो काम उत्साहसे,
चर्खा कातो नित्य प्रति, यही याचना आपसे ॥

[६]

त्याग विदेशी वस्त्र स्वच्छ खद्दर अपनालो,
साठकोटि कल्दार, देशका, यहीं बचालो ।

हुए अनेकों युद्ध किन्तु यह रण अद्भुत है,
चर्खा-खादी और अहिंसाव्रत संयुत है।
त्यागो सब शृंगारको, नियम स्वदेशी धार लो,
इस राष्ट्रिय-संदेशको माताओ ! स्वीकारलो ॥

२२-बहिनोंसे—

[१]

देश-जातिको अगर समुन्नत करना चाहो—
संतानाम भव्य भाव जो भरना चाहो।
बनो साध्वी नारि, करो पतिव्रत प्रतिपालन,
उठो देवियो ! करो गृहस्थीका संचालन।

[२]

नित प्रति बहिनो ! करो वही उद्यम तुम जिससे—
संतानोंमें कर्मवीरता, आवे जिससे।
करें देशका त्राण और, दासत्व मिटादें,
भारतको स्वातंत्र्य-सुधाका पान करादें,

[३]

पति परायणा वीर आर्य महिला होती थीं,
संकट में भी प्रिय स्वधर्मको नहिं खोती थीं।
सम्मुख रिपुके नहीं नेक भी वे डरती थीं,
वरन शत्रुका मानमर्द कर ही रहती थीं।

[४]

वर्त्तमानमें जहाँ देखिये तहाँ हमारी,
नीचों द्वारा हा ! पातीं बहिनें दुख भारी।

प्रति दिन होतीं धर्म भ्रष्ट हा ! अगणित बहिनें,
किन्तु तनिक भी हृदय चेततीं हाय ! न बहिनें।

[५]

बहिनो ! हमको समय प्रतिक्षण यह सिखलाता।
जो रखता है शक्ति वही जगमें सुख पाता।
निर्बलपनको त्याग वीर रमणी-व्रत धारो,
मानव जीवन पाय, देवियो ! हृदय न हारो !

[६]

पति पर निर्मल नेह रखो परमेश्वर जानो,
उनकाही आदेश अहर्निश बहिनो ! मानो।
इसी नियमपर यदि जीवन भर तुम जाओगी,
निश्चय दोनो लोक बीच आनंद पाओगी,

२३–वीर पथिक।

[१]

वीर पथिक ! निज मनमें किंचित भी हताश मत होना,
पहुँच लक्ष्य पर ही प्रियवर ! तू अमर शांति पालेना।
बाधाएँ आएँ—आने देना, समुद गले मिललेना,
वरन कर्म-पथपर विघ्नोंको सखे ! निमंत्रण देना।

[२]

लोभी क्रूर निरे उपदेशक कामी खल बकवादी,
परधन यश—वैभव अभिलाषी, अधर्म कर्मके आदी।
देश—समाज, धर्मके द्रोही, और विपुल उन्मादी,
सखे ! मिलेंगे तुम्हें अनेकों वैदिक मत प्रतिवादी।

[३]

होना वैदिक धर्म प्रचारक सच्चे आर्य कहाना,
मातृभूमिके लिये सखे बलिवेदीपर चढ़ जाना ।
मरते दम तक कर्म क्षेत्रमें, सच्चा पंथ बताना,
वीर ! ज्ञान-मार्तंड प्रभासे अंधःकार मिटाना ।

[४]

' सेवक, बन सच्चे स्वदेशके प्रणसे नहीं टलोगे—
रखना दृढ़ विश्वास हृदयमें जन्म-लाभ पालोगे ।
प्यारे पथिक ! बनो सत्पथके, शुद्धभाव उर आनो ।
निश्चय विजयी वीर बनोगे ब्रह्म वाक्य सच जानो ॥

२४ ब्राह्मणोंसे—

[१]

उठो ब्राह्मणो ! जाति दशाको शीघ्र सुधारो,
धर्मवीर बन उच्चभावको उरमें धारो ।
बनो गुणी, निष्णात, मार्ग सच्चा स्वीकारो,
हुवा पतन है घोर ज़रा तो हृदय विचारो ।
हरो जाति-अज्ञानको, ज्ञानप्रभा प्रगटित करो,
पूर्व प्रतिष्ठा प्रातकर, अंधकार जगका हरो ।

[२]

थे पूर्वज विद्वान विश्वमें कभी तुम्हारे,
उनकी तुम संतान अविद्याहो स्वीकारे ।
पूज़ित हो कर धर्म अधर्म तुम करते प्यारे ।
दे अनेक उपदेश तुम्हें पंडित हैं हारे ।

उठो घोर निद्रा तजो उत्थान करो द्विज जातिका,
जिससे जगमें अभ्युदय, होवे भूसुर जातिका ॥

[३]

संध्या तर्पण ब्रह्मकर्म सब त्याग चुकेहो,
वेदशास्त्र-अध्ययन सभी तुम भूल चुके हो ।
केवल है अब उदर पूर्तिपर ध्यान तुम्हारा ।
भिखमंगी या दास्य कर्मका लिया सहारा ।
'भूसुर' कहलाकर अहो ! भिक्षुक खासे बन रहे ।
धर्मकर्मको छोड़कर, अंधकूपमें गिर रहे ॥

[४]

जगमें वह भी रहा अभ्युदय, काल तुम्हारा,
जगतीतल पर रहा पूर्ण अधिकार तुम्हारा ।
तपकाथा परिणाम पूजता जगत तुम्हें था,
श्रीहरिसे भी मिला श्रेष्ठ सम्मान तुम्हें था ।
अत्रि-वशिष्ठ कणाद भृगु, गर्ग महर्षि महान थे ।
भरद्वाज कश्यप प्रभृति, त्रिकालज्ञ गुणवान थे ॥

[५]

श्रीमद्द्रोणाचार्य वीरवर हुए तुम्हीमें
विप्रवंश अवतंस परशुधर हुए तुम्हीमें ।
ऋषि गौतम शांडिल्य जैमिनी हुए तुम्हीमें ।
यज्ञवल्क्य, जमदग्नि आदिभी हुए तुम्हींमें ।
उन्हीं पूज्य ऋषिवर्गकी संतानें दुष्कर्मसे
वंचित हैं अब हो हीं, श्लाघनीय निजधर्मसे ॥

[६]

अनुसूया अरु अरुंधतीसी पतिव्रताएँ,
हुईं विप्र कुलबीच कई विदुषी महिलाएँ
किंतु आजकी दशा और ही रंग दिखाती—
स्वप्नसदृश सब बात पूर्वकी यहाँ लखाती।
अभी समय है विप्रगण! उठो २ निद्रा तजो।
भूलो अपनी दुर्दशा, कर्म करो, आलस तजो॥

[७]

जो कुछ भोगा भोग अभीतक वही बहुत है,
जागो अब भी भ्रात, इसीसे सबका हित है।
द्वेष दंभ पाखंड त्याग, सत्पथ स्वीकारो,
वेदविहित शुभ कर्म करो, मत मनमें हारो।
फिर पूजित होगे सुनो, निश्चय जानो कर्मसे।
क्या हो सक्ता है नहीं, चलकर अपने धर्मसे?

२५—प्रवासी भारतवासियोंकी ओरसे—

[१]

आशा-कुसुम देश भारतके, मातृभूमिके प्यारे!
भूल चुके क्यों आज कर्मपथ, उदासीनता धारे।
सुना न देखा कहीं आज लों जाति देश या भूपर,
दृश्य विचित्र दिखाई देता आज हमें भारतपर।

[२]

प्यारी मातृभूमिको तजकर यद्यपि हम हैं आए,
हुए प्रवासी पृथ्वीतलके, विविध क्लेश हैं पाए।

तौ भी मन मंदिरमें प्रतिमा, भारतकी रहती है,
सदा हमारे हृदय-कुंजको हरीभरी करती है।

[३]

दिखा रही है दशा देशकी भावी संकटकारी,
चहूँ ओरसे दुःख-द्वंद्व घन उमड़ रहे हैं भारी।
दलबंदीने राष्ट्रशक्तिका हाय! ध्वंसकर डाला,
उज्वल हृदय-भवनमें हा! हा! पोत दिया है काला।

[४]

ऐक्य वृक्षको काट देशने फूट वृक्ष बोडारा,
बना स्वराज्य-सेतु क्षणभरमें मेट दिया है सारा।
हिन्दू-मुस्लिम बंधु कहाँतो समुद गले मिलते थे,
सम्मुख देख परस्पर जिनके हृदय-कमल खिलते थे।

[५]

वेही आज परस्परमें हा! बने खूनके प्यासे,
हो मदान्ध निजशक्ति ह्रासके कर्म कर रहे खासे!
वीर हज़ारों कारागृहमें पड़े आपके कारण,
त्याग अनेकों सौख्य किया है देशभक्ति व्रत धारण।

[६]

नक विचारा नहीं आपने, कृतघ्नता दिखलाई,
व्यर्थ वितंडावाद मचाकर जूझे भाई भाई।
माताओं बहिनों बच्चोंपर, पाप किये मन माने,
बने घोर अत्याचारी हा! प्रभुसे भी न डराने।

[७]

कहिये तो किस अधम ग्रन्थने यह दुर्नीति बखानी !
लड़ें परस्पर बन्धु-बन्धु मिल कर कुतर्क मन मानी ।
शांत रहो, सोचो निज मनमें क्या यों स्वर्ग मिलेगा ?
नीच कर्म करनेसे भाई निश्चय नर्क मिलेगा ।

[८]

द्वेष–भावना–पूर्ण आपके इस प्रकार जीवनमें,
कभी स्वराज्य देशमें होगा, ज़रा विचारो मनमें ।
हिन्दू-मुस्लिम मिलो परस्पर, द्वेष भावना त्यागो,
करो मानवी कर्म बंधुओ ! मोह नींदसे जागो ।

[९]

फिज़ी-अफ्रिका और केनियाकी दुःखदशा निहारो,
गृह विवादको त्याग शीघ्रही मातृभूमि दुख टारो ।
सत्य-अहिंसा-विश्वप्रेम, सद्भाव हृदयमें धारो,
भारतीय आदर्श पुरातन अपना फिर स्वीकारो ।

[१०]

जीवित रहते हुए हमारे, मातृभूमि दुख पावे,
पराधीनतासे परिपीड़ित निशिदिन आँसू ढावे ।
जीवनको धिक्कार हमारे, अब भी हृदय मिलादो,
जागृतिका संदेश, देशके घर २ में पहुँचा दो ।

२८–विचित्र परिवर्त्तन ।

[१]

पराधीनतासे परिपीड़ित व्याकुल मातृ मही है,
नव जीवन-आशा-दीपक भी दिखता नहीं कहीं है ।

क्रूर कलह अविचार पूर्ण मन, आज हमारा क्यों है ?
करुणा क्रन्दन, कहीं, कहीं यह उदासीनता क्यों है !

[२]

कहीं सुनाई पड़ते हैं क्यों आज विभीषण दंगे !
हिन्दू-मुस्लिम बंधु कहाकर आज बने क्यों नंगे ?
बने त्रिवेणीसंगम जैसे—कहते थे 'हर गंगे'
बात २ पर आज डालते क्यों कर विकट अड़ंगे ?

[३]

अत्याचार कहीं होताहै, हिन्दू अवलाओंपर,
कहीं नमक छिड़का जाताहै, जले भुने घावोंपर।
कहीं गाज फाटी पड़ती है, निर्मलनयभावोंपर,
कहीं चढ़ाई होजाती है, दूधमुहे बच्चोंपर !!

[४]

जिन्हें अभी हम बड़े मोहसे 'प्रिय नेता' कहते थे
जिनके मनकी बात जानकर, वैसाही करते थे।
जिनके लिये एक हो दोनों हर्ष पूर्ण मरते थे;
हाय ! कुमंत्र हमें देते जो,—सदुपदेश देते थे।

[५]

कहीं हिन्दुओंपर आफ़तके पर्वतको ढानेको—
कहीं हाय गौ-माताओंके मांस—रुधिरखानेको।
कहीं आर्य ललनाओंको हा ! धर्म भ्रष्ट करनेको—
कहीं मंदिरोंको,—तन्मय हैं नष्ट भ्रष्ट करनेको।

[६]

इस प्रकार भारतभूतलपर हाहाकार मचा है,
सत्यानाशी फूट-पापने खासा रास रचा है ।
सोतोंको तो सरल हुआ है, देखागया जगाना—
किन्तु जागते हुए अगर हों सोये—नहीं ठिकाना ।

[७]

आँखोंके इन अंधोंको हा ! कौन जगाने आए,
किस प्रकार अपना सिर देकर, मार्ग इन्हें बतलाए ।
है जगदीश भरोसा अबतो, वही इन्हें समझाए,
मति-विहीन इन बंधुगणोंको, वही आय अपनाए ।

[८]

हरे ! समय बीता जाता है, तुम कबतक आओगे !
अगर विलंब करोगे अबतो—खाक यहाँ पाओगे ।
कृषी सूख जाने पर ही क्या नाथ ! यहाँ बरसोगे,
आओ नाथ ! उबारो सत्वर, या फिर तुम तरसोगे !

२७—कुली लाइनमें प्रवासी भारतीय बहिनें—

[१]

पाठक ! हृदय थामकर पढ़ना, दुखसे भरी कहानी,
वही हृदय दुख जान सकेगा, जिसने विपदा जानी,
वज्रहृदय—निर्दय स्वारथरत, विषयी लंपटलोभी—
आरतनाद सुनेगा किंचित, द्रवित न होगा तोभी ॥

[२]

भूतल पर यदि जीवित दुखका, नर्क देखना चाहो—
इन गौराङ्ग पिशाच खलोंका न्याय (!) देखना चाहो—

हृदय थामलो ज़रा पाठको ! कुली लैनमें आओ—
देख दुर्दशा इन बहिनोंकी दो दो अश्रु बहाओ ।

[३]

लम्बाई दश फीट देखलो, सातफीट चौड़ी है,
पाँच-सात जीवोंको इतनी जगह कहीं थोड़ी है ! !
चार मर्द पीछे होती है एक अभागिनि नारी—
अपने प्राण बचाकर मानो लज्जा कहीं सिधारी !

[४]

पापपूर्ण जीवन रहता है, किंचित धर्म नहीं है,
रोग-शोक-परिताप पापका मानो स्थान यही है ।
प्रतिदिन होती पाप क्रिया है, मारकाट मचती है—
देख दृश्य बीभत्स यहाँसे मनुष्यता भगती है ।

[५]

नीच कुटिल अधिकारी गण भी, पाप कृत्य करते हैं,
इन अभागिनी दुखी नारियोंका सतीत्व हरते हैं ।
होता है अति कठिन स्त्रियोंको, अपना धर्म बचाना—
हाय ! असंभव हो जाता है, इनसे पिंड छुड़ाना ।

[६]

नीच अराकाटी जब इनको, लालच दे फुसलाते—
नर्कतुल्य इस कुली लैनको भूका स्वर्ग बताते !
करलेतीं स्वीकार देवियाँ दुःख दर्दकी मारी—
जब जातीं इस स्वर्ग लोकमें करम ठोंकतीं भारी ।

[७]

सर्वेश्वर ! यह नर्कलोक है या कुछ और बला है ।
या यह कोई मृत्यु लोकमें भगवन् ! पाप—कला है ।

जिस भारतकी सती नारियाँ धर्म पूर्ण रहती थीं—
कभी स्वप्नमेंभी वे अपना धर्म नहीं तजतीथीं।

[८]

हाय ! आज वेही दुर्भागिनि विविध क्लेश हैं पातीं,
जीवन नर्कतुल्य वे अपना निशिदिन हाय ! वितातीं।
दुर्भागिनि इन अबलाओंको, क्या २ सहना होगा !
दुःखपूर्ण इस नर्क लोकमें, कबतक रहना होगा ?

[९]

एक द्रौपदीका प्रभुवर ! था, तुमने चीर बढ़ाया—
एक सती सीताके कारण था संग्राम मचाया।
हाय ! आज लाखों अबलाएँ पड़ीं खलोंके पाले,
कहां आज हो हे मनमोहन ! नटवर ! वीणावाले !

[१०]

दुखिया दीनहृदय अबलाएँ हैं हरि ! शरण तुम्हारे—
कठिन विपतिमें तुम्ही एक हो इनके नाथ ! सहारे !
जन्म सिद्ध अधिकार दयामय ! अब भारतको दीजे—
विजयी और स्वतंत्र शीघ्रही, प्रभो ! इसे अब कीजे।

[११]

जबलों भारतमें स्वतंत्रता देवि नहीं आएगी—
नहीं जहाँ लो पराधीनता निशाचरी जाएगी।
तबलों हियमें शुभाभिलाषा करें कौनके बलपर,
शुभ चिंतक है कौन हमारा भगवन ! पृथ्वीतलपर।

[१२]

आओ अब सर्वेश ! प्रतिज्ञा[1] अपनी वह प्रतिपालो—
करो देशका त्राण दयामय ! अबतो इसे सँभालो ।
निःसहाय इन अबलाओंकी यही एक अर्ज़ी है—
मानो अथवा इसे न मानो यह तुम्हरी मर्ज़ी है ।

२८—जन्मसिद्ध अधिकार

[१]

लघु पौधा यदि बड़े वृक्षके होगा नीचे,
माली उसको भली भाँतिसे कितना सींचे।
कभी नहीं वह फूल फलोंसे शोभित होगा—
होगा तो बस अल्प कालका पाहुन होगा ।
उसकी उन्नतिके लिये, स्वतंत्रता दरकार है,
स्वावलम्बसे श्रेष्ठता आती है—यह सार है ।

[२]

वृक्षादिक भी स्वावलम्ब जगमें चहते हैं,
हो करके स्वाधीन धरापर वे रहते हैं ।
नहीं आत्म सम्मान कभी जगमें खोते हैं—
कहा पराये दास नहीं जगमें जीते हैं ।
नहीं किसीको भूलकर बतलाते हैं दीनता—
घृणा पराश्रयसे उन्हें, प्यारी है स्वाधीनता ।

[३]

'जन्मसिद्ध अधिकार' नहीं जिसको प्यारा है,
नर श्रेणीसे अधम वही जगमें न्यारा है ।

१—यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्—आदि । गीता ।

जीवित ही वह मरा हुवा प्राणी है जगमें-
पराधीनता पाश पड़ी है जिसके पगमें-
दुनियामें विख्यात है मानवकी प्राचीनता,
जगदीश्वरसे है मिली, स्वतंत्रता-स्वाधीनता।

[४]

तजकर अपना स्वत्व विश्वमें जो रहता है,
नामर्दा हो फिर भी निजको नर कहता है।
बढ़कर उससे नीच नहीं जगमें है कोई-
किसी भाँति भी है स्वतंत्रता जिसने खोई।
ईश दत्त अधिकारका करता जो सम्मान है,
पराधीन जो नर नहीं वही पुरुष गुणवान है

[५]

परवशतामें अगर बुराई लेश नहीं है-
तब तो फिर अति नीच वस्तु जगमें न कहीं है।
स्वतंत्रता पुरुषत्व, दासताही पशुता है,
मूर्ख वही जो पराधीनतामें रहता है।
तनिक विचारो मानवो! त्याग हृदयकी हीनता-
नर्क तुल्य है दासता, स्वर्गतुल्य स्वाधीनता।

[६]

त्याग पराई आश याद कर लो अपना बल,
बनकर फिर स्वाधीन, सँभालो निज जन्मस्थल।
सिंह-सुअन भी कभी अजाका दास हुवा है?
नैसर्गिक स्वातंत्र्य कभी क्या नाश हुवा है?

भूले भारतवर्षकी अनुपम हम प्राचीनता—
फिरसे लेना है हमें, भारतीय स्वाधीनता ।

[७]

जब था भारतवर्ष कभी स्वाधीन हमारा—
ऋद्धि-सिद्धिकी सौख्यपूर्ण थी बहती धारा ।
रोग-शोक परिताप-पापका नाम नहीं था—
नींच, ऊँच, दुख—द्वंद्व प्रभृतिका काम नहीं था ।
सुख समृद्धि परिपूर्ण था, यह भारत संसारमें ।
हो स्वतंत्र निश्चिंत था, आनँद पारावारमें ॥

[८]

स्वतंत्रताके लिये पार्थने युद्ध लिया था,
पार्थ-पुत्रने इसी लिये बलिदान दिया था ।
हिन्दूपति राणा प्रतापने इसके कारण—
त्याग राजसी ठाठ किया भीषण व्रत धारण ।
लोकमान्य श्री तिलकने, जन्मसिद्ध अधिकारको,
माना जीवनप्राण था, सहे घोर परितापको ॥

[९]

पक्षपातका नाम नहीं भारतमें होगा—
पशुबलका अभिमान नहीं जब हममें होगा ।
हिंसाका संग्राम नहीं जब करना होगा ।
तभी देश स्वाधीन विश्वमें सच्चा होगा ।
नींच-ऊँचकी भावना मनसे जब मिट जायगी ।
तभी हमें स्वाधीनता, वीरो ! फिर मिल जायगी ।

[१०]

होना फिर है हमें सखे ! स्वाधीन धरापर,
चलना फिर है हमें उसी वीरोचित पथपर ।
करो क्रियात्मक वीरकर्म ' स्वाधीन ' कहाओ—
लड़ो परस्पर नहीं, व्यर्थ मत रक्त बहाओ ।
प्रिय स्वराज्य तो विश्वमें, जन्मसिद्ध अधिकार है,
इसे प्राप्त करना हमें, सब प्रकार स्वीकार है ।

[११]

प्रेम भावका स्रोत बहाना हमको होगा—
स्वतंत्रताके लिये हमें मर मिटना होगा ।
सत्यधर्मसे प्यार हमें करना ही होगा—
तभी देशमें राम-राज्यका दर्शन होगा ।
भारतमाता दे रही प्रेमपूर्ण आशीष है,
विजय मिलेगी विश्वमें रक्षक श्रीजगदीश है ।

[१२]

शासन फिर प्यारे स्वदेश पर हमी करेंगे—
भारतका व्यवसाय हाथमें हमी धरेंगे ।
घर २ चर्खा चला सूत तैयार करेंगे—
निर्धनको धनवान बना सब क्लेश हरेंगे ।
मिट जावेगी शीघ्रही सब प्रकारकी दीनता—
ब्रह्मवाक्य सच मानना, लेंगे हम स्वाधीनता ॥

२९—उद्बोधन—

जीवन अपना समुन्नत, बनाते चलो,
प्रेम चरणोंमें प्रभुके बढ़ाते चलो ।

और विघ्नोंको पथसे हटाते चलो,
नीच भावोंको उरसे मिटाते चलो ॥
वीरो ! आदर्श अपना वनाते चलो,
जीवन मुरझे हुओंमें जगाते चलो ।
शीघ्र विछुड़ोंको सत्वर मिलाते चलो,
दीन दुखियोंके दुःखको मिटाते चलो ।
ज्ञानभंडार अपना बढ़ाते चलो,
शुभ 'संदेश' जगको सुनाते चलो ॥

३०—शुभाभिलाषा—

[१]

'वी'र प्रकृति, कर्त्तव्य निरत हो, करो देशकी सेवा,
'र'क्षक वनो अनाथोंके, हो विपति तुम्हारी मेवा ।

[२]

'भू'मंडलमें विजय पताका धर्म पूर्ण फहरादो,
'मि'टा दमन-दासत्व देशका, भीषण क्लेश मिटादो ।

[३]

'त'त्पर रहो क्लेश सहनेको नेक न हियमें हारो,
'व'रन हथेलीपर अपना शिर मातृभूमिहित धारो ।

[४]

'स्वा'भाविक अतीत 'वैभव'का शुभ 'संदेश' सुनादो,
'ग'र्व निरंकुश शासकगणका वीर ! समूल नसा दो ।

[५]

'त'न्मय रहे मातृ सेवामें, 'अजित'—सुबुद्धि तुम्हारी,
'है' यह हरिसे शुभाभिलाषा निशिदिन वीर ! हमारी ।

३१–सैनिकवीर !

[१]

'सै'-निकवीर ! मातृसेवा-हित, अपना जीवन धारो;
'नि'-न्दा परवशता, विषादके निकट कभी न पधारो ।
'क'-रो सदा सत्कर्म देशकी भीषण विपदा टारो,
'वी'-र व्रती कर्तव्य निरतहो, सत्यमार्ग स्वीकारो ।

[२]

'र'हो सदा तत्पर अनगिनती, भवसंकट सहनेको,
'ह'तसाहस तुम कभी न होना, अकर्मण्य बननेको ।
'मा'तृभूमिकी तुम आशाहो, दुखिया-दीन-सहारे,
'रे'-खाहो भारत ललाटके 'सैनिकवीर' हमारे ! ॥

३२–वीरका स्वागत.

स्वातंत्र्य-सुधा बरसानेको, भारतके क्लेश मिटानेको,
नवजीवन-जोति जगानेको हे वीरवर्य ! आओ आओ !

[१]

भारतकी कला जगानेको, वेदों का नाद सुनानेको,
ऋषियोंकी नीति चलानेको, असुरोंकी रीति मिटानेको-
सद्धर्मभाव सिखलानेको–
हे वीरवर्य ! आओ २ ॥

[२]

फिजी, अफ्रिका और केनियाँ में संदेश सुनानेको,
दुखित प्रवासी देशबन्धुओंमें धीरज बँधवानेको-
प्रियभारतकी नींद भगानेको–
हे वीरवर्य ! आओ २ ॥

[३]

अत्याचारी मानव गणको, सदाचार सिखलानेको
निर्वलको शक्ति दिलानेको, सबलोंको दया सिखानेको ।
दलितोंको पुनः उठानेको—
हे वीरवर्य ! ० ॥

[४]

पशुबल का अंत करानेको जगसे आतंक मिटानेको,
हाँ; आत्मशक्ति प्रगटानेको, अन्याय-विपाद हटानेको-
भूलोंको पथपर लानेको—
हे वीरवर्य ! ० ॥

[५]

जननीको धैर्य बँधानेको, पुत्रोंका शौर्य बतानेको,
हाँ; स्वावलम्ब अपनानेको, दासत्व समूल नसानेको,
प्रिय भारतकी जय गानेको—
हे वीरवर्य ! आओ आओ ॥

३३ गान्धी-गौरव

[१]

सत्य—प्रेम अवतार, देश—दुख हरनेवाले !
आत्मशक्तिकी चरम साधना करनेवाले !
दुखियोंके कल्याण हेतु बलि होनेवाले—
भारतमें स्वातंत्र्य-सुधा बरसाने वाले !
सत्याग्रह संग्रामके सेनानायक आपहैं,
जिसके आश्रयसे सदा, मिटजाते संताप हैं !

भीषण हत्याकांड किया डायर ज़ालिमने,
किया न तनिक विचार निरंकुश हो हाकिमने।
हो मदान्ध पंजाबमें किया पाशविक कृत्य जब,
वीर ! तुम्हें करना पड़ा, सत्याग्रह संग्राम तब।

[६]

भारत-उर-सम्राट् ! तुम्हारी सदा विजय हो,
भारतमाके लाल तुम्हारी जय हो जय हो।
हो पूरण संकल्प साधना शीघ्र सफल हो,
वीर ! तुम्हारा प्रेम देशपर सदा अटल हो।
सत्य-अहिंसा-धर्मके साधक अद्भुत वीरवर !
हो परार्थ जीवन लिये, देश-प्रेमरत धीर धर !

[७]

प्रिय स्वराज्यका मूलमंत्र चर्खा बतलाया—
सत्य अहिंसा क्षमा धर्मका पाठ पढ़ाया,
अन्यायीसे 'असहयोग' करना सिखलाया—
करके अद्भुत कार्य, वीरपद सच्चा पाया।
अतुल पराक्रम देखकर, नौकरशाही डरगई,
कृष्ण भवनमें शीघ्रही, वीर ! अपको ले गई।

[८]

कर्म क्षेत्रमें देख पुनः वह मूर्ति तुम्हारी,
प्रभुसे है अत्यंत प्रेमसे विनय हमारी।
जबलों रवि-शशि रहें, जाह्नवी-यमस्वसाकी—
जल-धारा नित बहे गोद पर भारतमा की।

तब लों भारत मुकुटमणि, हो चिरायु आनंद करो,
भारतको स्वाधीन कर, मातृभूमिका दुःख हरो ।

३४-भारतीय नौजवानोंसे—

[१]

युवको ! आज तुम्हारा भारत रणक्षेत्र है बना हुवा,
पशुबल आत्मशक्ति दोनोंमें, भीषण रण है ठना हुवा ।
वीर वरोंकी हुंकारोंसे, सुभटोंकी घन गर्जनसे,
वीर देवियोंके साहससे नव युवकोंकी तर्जनसे,

[२]

दृश्य अनोखा दिखा रहा, भारतके कोनो-कोनोंमें,
वीरोंके हृदयोंमें देखा, रंक-धनीके भवनोंमें ।
हृदयव्योममें स्वावलम्बकी आलोकित है प्रभा हुई,
है प्रभात कालीन लालिमा और नितान्त अपूर्व नई ।

[३]

तन-मन धनसे देश हमारा, इसका स्वागत करनेको,
तैयार खड़ा है कर्मक्षेत्रमें, सार्थक जीवन करने को ।
दास्य-विटपका ध्वंस शीघ्रकर, मातृभूमि दुख हरनेको,
बलिवेदी पर अड़ा हुवा है, प्रिय स्वराज्यहित मरनेको ।

[४]

आओ वीरो ! रणस्थलीमें भारतका उद्धार करें,
अधम महामायावी पशुबल-निशिचरका संहार करें ।
भवरोंमें है फँसा हुवा, भारतका बेड़ा पार करें,
तीस कोटि संतानोंका दुःख, आत्मशक्तिसे शीघ्र हरें ।

[५]

त्यागेंगी जब पराधीनता, भारत संतानें सारी,

हैं हम तव स्वतंत्रता देवीके पद-पूजनाधिकारी।

अगर कहीं इस राष्ट्रयज्ञमें होना पड़े हमें वलिदान,

हो प्रमुदित होनाही होगा, नवयुवको ! हमको बलिदान।

[६]

जिस भारतने, पूर्वकालमें ग्रीस आदिको शिष्य किये,

'सभ्य' कहाते आज देश जो उन्हें अनेकों ज्ञान दिये।

जिसने पाया था पृथ्वीपर 'गुरुपद' का गुरुतर सम्मान,

वही आज है क्लेश भोगता दास-दशामें पा अपमान।

[७]

नौकर बनकर, भीख माँगकर जीना हम उत्तम गिनते,

किन्तु परिश्रम करके युवको ! जीना हम हैं क्या चहते ?

शिल्पकला कौशल करनेमें, हमें निचाई दिखलाती।

इसी लिये हा ! आज हमारी निर्धनता बढ़ती जाती।

[८]

दृढ़ साहस-गंभीर भाव भी क्या हममें पाया जाता ?

समारोहसे उठा काम भी क्या पूरा होने पाता ?

पारस्परिक द्रोहने हमको, बुरी तरह बलहीन किया,

तिस पर भी क्या हमने युवको ! इन बातोंपर ध्यान दिया !

[९]

उठो ! वीर युवको ! अवसरको अब न निरर्थक जाने दो।

करो मानवीकर्म–विघ्न बाधाएँ आएँ—आने दो।

करना विजय तुम्हींको ही होगा परम कठिन जीवन-संग्राम,

निश्चय प्राप्त तुम्हें होवेगा, प्रिय स्वराज्य सुखप्रद अभिराम ॥

३५—छात्र-प्रतिज्ञा

[१]

पढ़ेंगे सुविद्या, सभी गुणोंमें प्रवीण होंगे,
धर्म पूर्ण विशद विचार अपनाएँगे ।
कलाए अतीत आर्यवर्तकी जागृत कर,
देशको स्वातंत्र्य-सुधा-धारामें न्हिलाएँगे ।
बनेंगे कर्मण्य हम, होंगे न निराश कभी,
पशुओंकी भाँति नहीं जीवन बिताएँगे,
जो कुछ कहेंगे उसे निश्चय करेंगे हम,
देशबन्धुओंमें नवजीवन जगाएँगे ।

३६—देशबन्धु दासके विछोहमें—

(भारतमाताका विलाप)

[१]

हा ! गोदीका लाल गवाँकर हुई आज मैं दीना,
'चितरंजन' मेरे मोहनको किस निर्दयने छीना ?
कैसे धीरज धरूं हृदयकी कैसे आग बुझाऊँ ?
'देशबन्धु'के बिना हृदयको कैसे धीर बँधाऊँ ?

[२]

देख व्यथित माताको सर्वस, अर्पण कौन करैगा ?
इस दुर्दिनमें पीर जननिकी हा ! अब कौन हरेगा !
बन कर केवट कौन देशका अब पतवार धरैगा ?
बलिवेदी पर रामराज्य हित हा ! अब कौन चढ़ैगा ?

[३]

सोये हुए देशमें फिरसे, नवजीवन देनेको,
मातृभूमिके लिये स्वयंही दुःख भार लेनेको ।

इस दुर्गम भूचाल—कालमें नौकाको खेनेको—
सर्वस अर्पण कौन करेगा त्यागमूर्ति होनेको।

[४]

जीवनका उद्देश्य यही था जिसका अतिशय प्यारा—
देश-जातिहित जिसने अपना तन-मन-धन न्योछारा।
लाखोंकी संपतिको जिसने क्षणभरमें देडारा,
हाय! वही मेरा मनमोहन पावन धाम सिधारा!!

[५]

तिलक गोखलेके विछोहसे दुखिया दीन हुई थी,
अपने प्राण समान सुतोंको खोय मलीन हुई थी।
वज्रपात हा! हुवा अचानक कैसे धीर धरूँ मैं?
जाऊँ कहाँ हाय! हतभागिनि क्या खा आज मरूँ मैं।

[६]

'चितरंजन'के विना एक क्षण नहीं रहा जाता है,
विषम वियोग लाल मेरेका नहीं सहा जाता है।
क्षण २ में अति दुःख भाव हा! उमड़ २ आता है,
नहीं 'बसंती' दुहिताका वैधव्य सहा जाता है।

[७]

प्राणसमान व्यथित पुत्रीको कैसे धीर बँधाऊँ,
अथवा उसके साथ सिंधुमें मैंभी जाय समाऊँ।
करूं कौन उद्योग चित्तरंजनको जिससे पाऊं;
एकबार फिर प्राण पुत्रको अपने कंठ लगाऊँ।

[८]

कई करोड़ोंका जीवन धन कैसे हाय! मिलेगा,
हरे! तुम्हारा दुर्भागिनिपर, कब लों शस्त्र चलेगा।

करना मेरा अंत तुम्हेंहो इष्ट, शीघ्रकर डारो,
किन्तु न यों मुझ दुखियारीको तुम कलपा कर मारो ।

[९]

दुःखदायिनी इनचालोंको क्या न हरे ! छोड़ोगे ?
शरणागत वत्सल होकर मुख, दुखियासे मोड़ोगे ?
पराधीन मुझ दुर्भागिनिने क्या अपराध किया है–
जिससे क्रोधित होकर तुमने वज्राघात किया है ?

[१०]

करो नाथ ! मनमानी अपनी जो कुछ तुम्हें सुहावै,
कौन निषेध करै प्रभु ! तुमको, करो वही मन भावै ।
किन्तु नहीं अच्छा होता है, अबला नारि सताना,
वरन शास्त्र सम्मत होता है उसका दुःख मिटाना ।

[११]

मेरी आँखोंकी वह पुतली नेक नहीं दुख पावे,
हरे ! स्वर्ग में भी वह मेरा मोहन, आनँद पावे ।
पुनर्जन्म हो–फिर गोदीका मेरा लाल कहावे,
इतनी करना दया, दयामय ! दया तुम्हें जो आवे ।

३७—कुछ शिक्षाएँ—

श्री हरि पद-प्रति प्रीति हृदयमें सदा पाठको ! धारो,
वेद विहित शुभ कर्म करो नित सत्य मार्ग स्वीकारो ।
कर संपादन ज्ञान स्वयं फिर, औरोंको बतलादो,
कर्म किये बिन मुक्ति नहीं है यह भी उन्हें सुनादो ।

[२]

कभी अकारण भी कोई पर क्षुद्र भाव मत रखना,
बुरे कर्म का भोग स्वयंको निश्चय पड़ता चखना ।
साधु वही है जो रिपुकाभी बुरा न मनसे चाहे,
वरन ईशसे विनय भावसे उसका हित ही चाहे ।

[३]

साधु पुरुष सम्मुख-पीछे भी सदा प्रेम करते हैं,
किन्तु अकारण ही पामर जन उन्हें व्यथित करते हैं ।
दुष्टों का स्वभाव होता है, परको दुख पहुँचाना,
देख दुखी ओरोंको, भारी मन आनंद मनाना ।

[४]

देख पराई व्यथा हृदयमें दया तुम्हारे आवे,
दीन दुखी असहाय जीव तुमसे अनेक सुख पावे ।
कभी दूसरों को दुख देनेका उद्योग न करना,
वरन स्वार्थके साथ सदा परमारथ करते रहना ।

[५]

कर्मक्षेत्रमें कर्मवीरहो, धर्ममार्गपर चलना,
कर्मविमुख होना न हृदयमें नेक न पथसे हिलना ।
शुद्ध भावसे निश्चय रख कर, आत्म-उपासन करना,
हो अजातरिपु आत्मशक्तिसे, निर्भय वीर विचरना ॥

[६]

कामकंचनाशक्ति त्यागकर हो प्रभुपदके प्रेमी—
इन्द्रिय-निग्रह करो पुरुष हो ! आत्मधर्मके नेमी !
पाते हैं परमात्मपरमपद वे पुरुषारथ वादी—
हैं वे ही स्वाधीन महाजन भक्ति-सुधा-रस स्वादी ।

[७]

प्रभु पर रख विश्वास जीव जो अमर परमपद पाते,
धन्य वही हैं वंदनीय हैं कृपा-सिद्ध कहलाते ।
ज्ञानी और भक्त दोनोंका मूल त्यागही जानो;
निश्चय है सिद्धान्त हृदयमें कुछ संदेह न मानो ।

[८]

बिना नियमही जगत्पिताकी होती यदपि दया है,
अगर नियम हो तो फिर प्रभुकी, हम पर करुणा क्या है ?
किन्तु मानना हमको होगा नियम गुप्त निज मनमें,
जिसके अनुभवके पाने की शक्ति नहीं है हम में ।

[९]

यशाभिलाषा उच्च हृदय की अंतिम दुर्बलता है,
किये बिना निष्काम कर्मके लाभ न कुछ होता है ।
निन्दा-स्तुतिपर ध्यान धरो मत, उच्चादर्श बनालो,
यंत्र सदृश सत्कर्म करो नित, प्रकृति नियमको पालो ।

[१०]

सेवाभाव सीखना चाहो, पवनपुत्रसे सीखो,
सम्मुख रख आदर्श वीरका विमल हृदयसे देखो ।
वे महान इन्द्रिय विजयी थे और पराक्रमशाली ।
विमल भावना पूर्ण सदा थी उनकी दास्य प्रणाली ।

[११]

अनुशासन अपने स्वामीका कर स्वीकार उन्होंने,
जीवन-मरण आदिकी शंका लेश करी न उन्होंने ।

लाँघा वारिधि महावीरने, तनिक न भय उर आना,
उसी भाँति ही, तुम्हें चाहिये, अपना चरित बनाना ॥

[१२]

ठेकों और तालियोंसे यह हुवा देश चौपट है,
दीन-हीन दुखिया पुरुषों का हाय ! जमा जमघट है।
कर्मवीर हो कर्मक्षेत्रमें वीर कर्म दिखलाना—
मानो भूल चुका भारत है, वैभव कीर्ति कमाना ॥

[१३]

जो कुछ हुवा देखकर उसको नेक न हियमें हारो,
बढ़े चलो बस कर्मक्षेत्रमें निश्चय-दृढ़ता धारो।
सोते जगते हँसते- रोते सभी ठौर क्षण २ में,
परिचय देना दृढ़साहसका भीरु न होना मनमें ॥

[१४]

निर्बलताको परित्यागकर अपनेको पहिचानो,
'शक्तिहीन हूँ बुद्धिहीन हूँ'। यह उर भाव न आनो।
जाग्रत यह अभिमान रखो—'मैं काम और कंचनपर—
विजय लाभ लेनेवाला हूँ, क्यों न रहूं निज प्रणपर ? ॥

[१५]

प्रियवर ! जिसके अंतस्थलमें यह अभिमान नहीं है,
उस दुर्भागी-हृदय ब्रह्मकी जागृति लेश नहीं है।
जिस जगमें महेश्वरी माताका उत्तम शासन है—
वहाँ किसीसे भी डरनेका कहो कौन कारण है ?

[१६]

जहाँ हृदयमें उच्च भावना इस प्रकारसे होगी,
बुद्धिहीनता और भीरुता निकट नहीं फटकेगी।

देख विघ्न समुदाय हृदयमें नेक नहीं भय मानो,
वरन उन्हें सम्मुख अपने पा सच्चा गौरव जानो ।

[१७]

ज्ञान चक्षुओंसे प्रभुवरको देखो, हृदय जुड़ाओ,
त्याग उसे मनको विषयोंमें भूल न कभी लगाओ ।
वह नटनागर घट २ वासी है अति निकट तुम्हारे,
गुणावली जिसकी वर्णन कर, निगमागम भी हारे ।

[१८]

मोहजालमें फँसे जीवको लग जाओ सुलझाने,
सावधान रहना आलस फिर पास न पावे आने ।
सत्य-धर्मपर अटल रहो तुम जीवन मुक्त बनोगे,
औरोंके भी लिये जगतमें परमादर्श बनोगे ।

[१९]

जिस साधन, अनुभूति भजनसे पर उपकार न होता,—
जिससे मोह ग्रसित प्राणीका कुछ कल्याण न होता ।
पाप-पंकमें फँसे हुए नर तरें न जिसके द्वारा—
क्रिया-कलाप भजन-साधन वह अर्थ हीन है सारा ॥

[२०]

वाचक ! जब लों एक जीव भी फँसा रहेगा जगमें,
तबलों जीवन मुक्त न मानो अपनेको निज उरमें ।
संसारी जीवोंका जगसे जबलों त्राण न होगा ।
जन्म-मरण बंधनका तबलों संकट नहीं नसेगा ।

[२१]

अतः उन्हें भी दे सहायता जीवन मुक्त बनादो,
करा ब्रह्म अनुभूति उन्हें भी पावन-धाम दिला दो ।

है प्रत्येक जीव अपना ही अंग, सत्य यह जानो।
उसकी लाभ-हानिमें अपनी लाभ हानि तुम मानो॥

[२२]

तुम अपनेही अंगोंको हो,—अहो! भूल क्यों जाते,
विना अंग प्रत्यंग कभी क्या स्वार्थ सिद्ध कर पाते?
कृतघ्नता इस भांति बताना तुमको योग्य नहीं है।
रखो परार्थ सदा निज जीवन, शिक्षा योग्य यही है।

[२३]

पुत्र, पौत्र, स्त्री और कुटुम्बी जनको ज्यों अपना कर,
करते उनका शुभ चिंतन हो जिस प्रकार निशिवासर।
उसी भाँति जगके जीवोंपर शुभाभिलाप रखोगे—
तभी ब्रह्मजागृति होनेके सच्चे पात्र बनोगे।

[२४]

जाति-वर्ण पर ध्यान न धरकर अखिल विश्व प्रति उरमें—
शुभाभिलाषा जागृत कर दो भेद न हो 'निज-पर' में।
अहो! व्यक्तिगत मुक्ति क्या? न यह मुक्ति यथार्थ कभी है,
हो समष्टिगत मुक्ति—श्रेष्ठतम मुक्ति यथार्थ तभी है।

[२५]

उच्च भावनाएँ हैं जिनकी धन्य २ वे प्राणी,
महाप्राणता-उरविशालता उनकी है गुण खानी।
कोई भी सत्कार्य जगतका नहीं निरर्थक होता,
कर्म, क्रिया या भावरूपहो-किन्तु सफल है होता।

[२६]

हो एकाग्रचित्त मानवगण! ध्यान करो प्रभुव का,
मनन करो अतिप्रेम भावसे मिटे मोहतम उरका।

करो लोकहित कार्य, त्याग दो सब संकोच हृदयसे,
डटे रहो कर्त्तव्यकर्मपर-डरो न कभी प्रलयसे ॥

[२७]

जब तक है नर देह कर्मसे होता है छुटकार नहीं,
निष्काम कर्मके किये विना भव-बंधनसे उद्धार नहीं।
' वहुत गहन है कर्मगती ' श्रीमाधवने भी स्वयं कहा,
धन्य वही है स्वार्थरहित जो करता है शुभ कर्म अहा !

[२८]

उठो २ भारत संतानो ! अवसर व्यर्थ न जानेदो,
वह अतीत सा समय देशमें एक बार फिर आनेदो।
मुरझा हुवा हृदय-पंकज बन, भारतका लह लहा उठे,
विपदाओंसे व्यथित देश यह, नींद त्याग कर जाग उठे।

[२९]

जो सच्चे ब्रह्मज्ञ पुरुष हैं रखते यशकी चाह नहीं,
जीवनकी या नश्वर सुखकी उन्हें लेश परवाह नहीं।
उनका तो वस यही लक्ष्य है, अखिल विश्वका हो उद्धार।
यही सोच आजन्म करो तुम, कर्मक्षेत्रमें परोपकार।

[३०]

कर्म फलाशाही में रहता अंकुर जन्म जगतका है,
लेशमात्र इच्छा न धार जो कर्म निरंतर करता है।
' निष्कामकर्म योगी ' वे ही नर, धर्मशास्त्रमें कहलाते,
वंदनीय वे ही नरपुंगव, सत्य परमपद हैं पाते।

[३१]

स्वमन–स्वदेह सौख्यके कारण जो होता है कर्म नहीं,
' कर्म फलाशा त्याग ' वही है इसमें कुछ संदेह नहीं।

इस प्रकारके पुरुष कभी भी मार्ग भ्रष्ट नहिं होते हैं
जो कुछ भी करते हैं जगमें सफलकाम वे होते हैं ।

[३२]

भारतकी दुर्दशा देखकर किसे न मनमें दुख होगा,
अकर्मण्यता देख यहाँकी किसे हृदयमें सुख होगा ?
बुद्धिहीनता—द्वेषभावसे भारत है हो रहा मलीन,
किसी प्रान्तमें दृष्टि करो तुम कहीं जीवनी शक्ति रही न ।

[३३]

जहाँ देखिये तहाँ एक बस स्वार्थ दृष्टिमें आता है,
योग्यायोग्य विचार तनिक भी, नहीं कहीं दिखलाता है
रोग-शोक-संताप पूर्ण हो रहा आज है भारतवर्ष,
छाई घोर अशांति चहूँ दिशि, है न किसीके मनमें हर्ष ।

[३४]

उठो बन्धुओ ! उठो देशका सत्वर अभ्युत्थान करो,
दीन दुखी असहाय बन्धुओंका उरसे सम्मान करो ।
एकबार भारत फिर जगमें, कीर्तिकौमुदी चमकावे,
वही पूर्व कालीन उच्चपद, भारतवर्ष पुनः पावे ।

[३५]

है विरक्त नर वही जगतमें, जिसके मन मद-मोह नहीं,
सुख—दुख एक समान जिसे हैं, अप्रिय जिसे विछोह नहीं,
एक नहीं लाखों विपदाएँ भले उसे दुख पहुँचाएँ ।
विचलित कभी न होगा पथसे वाधाएँ अनेक आएँ ।

[३६]

मात—पिता—गुरु पूज्यजनोंके करो वचन प्रतिपालन,
किया जिन्होंने सखे ! तुम्हारा, प्रेमपूर्ण है लालन ।

रहो विनम्र उन्हें निज प्रभुता, भूल न कभी बताओ,
सदा कृतज्ञ रहो उनके तुम, कभी न उन्हें सताओ ।

[३७]

है क्षणभंगुर देह, न्यायसे द्रव्योपार्जन करना ।
परधन परदारा पानेकी अधम चाह मत करना ।
स्वभुजोपार्जित जो कुछ पाओ, तुष्ट उसीमें रहना,
आवें कितनेही संकट भी किन्तु धर्मपर मरना ।

[३८]

जो कुछ करो प्रथम निज मनमें उसपर खूब विचारो,
जो कुछ कहो उसे प्रतिपालो, झूठ न कभी उचारो ।
आने पास न दो आलसको, साहस कभी न त्यागो,
अकर्मण्य कायर होकरके भिक्षा कभी न मागो ।

[३९]

ऋणी पुरुषका जीवन जगमें, दुःख पूर्ण है होता,
चिंतित रहता वह निशिवासर, कभी न सुखसे सोता ।
ऋणसे मुक्त रखो अपनेको, यह शिक्षा उर धारो ।
मन मतंग को समय २ पर ज्ञानांकुशसे मारो ।

[४०]

प्रिय भाषण, परंतु सच्चा हो, अप्रिय सत्य न भाखो,
कभी किसी की करो न निंदा, सदा सीख यह राखो ।
वाणी और कर्म मनसे नित, श्रेष्ठ कर्म ही करना,
आत्माके प्रतिकूल अवैदिक पथमें पैर न धरना ।

[४१]

दुष्कर्मोंमें होड़ किसीसे, सखे ! कभी मत करना ।
करना हो यदि होड़ तुम्हें तो सत्कर्मोंमें करना ।

द्रव्योपार्जन होवे जितना करो खर्च कम उससे,
विपति पड़े पर सहाय होता, सधता कारज तिससे ॥

[४२]

ज्यों जल बूंदोंसे घट छिनमें पूरण भर जाता है,
त्यों विद्या धन धर्म कर्म भी संचय हो जाता है।
प्रियवर ! संचय करो इन्हींसे उभय लोक सुधरेंगे,
होंगे वेही सुखी जगतमें जो यह सीख लहेंगे,

[४३]

जीवजगत अरु देह-गेह सब स्वप्न सदृश मिथ्या है,
आत्म पुरुप जो है शरीरमें वह स्वरूप सच्चा है।
निर्विकार वह पुरुष ढका है मायाके पर्देमें,
नहीं जानते इसी लिये हम पड़े हुए हैं भ्रममें।

[४४]

रूप और रसके प्रेमी इस मनको उधर झुकाओ
सखे ! करो मन-दमन और अंतर्मुख इसे बनाओ।
स्थूलदेह यह मरण अनंतर, पंचभूतमें मिलती।
आत्म पुरुषके बिना जगतमें देह नहीं रह सक्ती।

[४५]

ध्यान, धारणा समाधि बलसे, सखे ! निरंकुश मनको,
अमल सच्चिदानंद सिंधुमें शीघ्र डुबो दो-मनको
हुवा जहाँ आधीन तुम्हारे-यह ' मन ' निश्चय जानो—
अधिक विलम्ब ब्रह्म दर्शनमें नहीं रहा तब मानो ॥

३८-हृदय-तरङ्ग

१-प्रेम-भावना

[१]

जगती तलमें भटक रहा हूँ, कैसे तुमको पाऊँ ?
भक्ति भावना-कुसुम चरणमें कैसे नाथ ! चढ़ाऊँ ?
मन्द २ मुसक्यान अधरकी सोच हिये हर्षाऊँ,
पाय तुम्हें घनश्याम ! चरणमें, प्रेम वारि वर्षाऊँ ।

[२]

प्रणमी मन, मन-मोहन माधव ! पद रज खोज रहा है,
इन दुखिया अँखियाँसे केशव ! जल अविराम वहा है ।
शवरी और सुदामा कैसा, वह अनुराग कहाँ है ?
मन-मंदिरके देव ! पधारो, जीवन शेष रहा है ।

[३]

सुंदर सुखद शब्द वीणाका, हियमें हरि गुंजादो,
मन मानसमें अमल सरल नव-जीवन-जोति जगादो ।
भव्य भावना पूर्ण हृदय-मंदिरको हरे ! बनादो,
ललितकलाधर ! सुखनिवास ! प्रिय दर्शन शीघ्र दिखादो ॥

२-सङ्केत

[१]

हृदय मानसके मञ्जु मयङ्क,
विश्वके पावन प्रेमाधार ।
स्वजन-पङ्कज-वन-हित-आदित्य,
दयामय करुणाके आगार ।

दिखाने अपना सच्चा प्रेम,
निभाने प्रण, प्रणयीके साथ–
प्रतीक्षा है जिनकी दिन रैन,
कहींसे आते होंगे नाथ ।

[२]

कहींसे हुवा सुरीला शब्द,
हो न हो वीणाकी हो तान ।
छोड़ दी हो हरिने वन-बीच,
हुवा हो सहसा प्रणका ध्यान ।
ध्येय है जिसका धर्मोत्थान,
विश्वका जो नित करता त्राण ।
वही मनमोहन वीणा-पाणि,
दे रहा है ‘ सङ्केत ’ महान ।

३–प्रतीक्षा

[१]

कियाथा जो ‘प्रण’ तूने देव ! सुनाकर आशामय ‘ संदेश ’
सत्य आऊंगा अवसर पाय, मानना मेरा वह–‘आदेश’
लगी है हृदय तलीमें आग, हो रही मिलने की अब चाह,
अरे हे चितचकोरके चंद ! कहाँ तक देखूँ तेरी राह ?

[२]

हृदयधन ! तव आनेका मार्ग, दिया मैंने पलकोंसे झाड़,
विकलहूं–दीन–हीन बेहाल, उठी है अमल प्रेमकी बाढ़ ।
अंततक मैं रखता हूँ नेह, तुझे भी है मेरी पर्वाह ?
अरे आ ! अबभी वीणापाणि ! कहाँतक देखूँ तेरी राह ?

[३]

वनोंमें—वृक्षोंमें गिरिमें, नगर गलियोंमें—मंदिरमें ।
सरोंमें सरिता के तट में तुझे ढूंढ़ा गिरिकंदरमें ।
कहाँ तू छिपा हरे ! आजा, मनोहर दर्शन दिखलाजा,
देशको सत्पथ बतलाजा, मानवी कर्तब सिखलाजा ॥

४—उत्कंठा

[१]

कबसे तेरे शुभागमनको देख रही हैं अँखियाँ ?
झाड़ रही हैं उत्कंठासे तव पथ पलकावलियाँ ।
कूड़ा-करकट तेरे पथका, कब से झाड़ बहाया,
देव ! अभी तक मनमंदिरमें तू क्योंकर नहिं आया ?

[२]

भव्य भावनाओंसे मैंने, मंदिर हरे ! सजाया,
विमल नेह—कुसुमोंका प्यारे ! मंजुलहार बनाया ।
ललित लालसा यही लगी है—कब मैं तुझको पाऊं—
'नेह कुसुम' का हार दयामय ! तुझे समुद पहिराऊं, ।

[३]

प्रेमभावनाओंकी प्रियतम ! अनुपम भट चढ़ाऊ,
चितचकोरके चंद ! तुझे पा जियकी आगि बुझाऊं ।
चरण कमल-नख चूमि विलोकों, उनकी छटा अनोखी ।
सुकृती शबरी गीध हुए थे, जिन पदकमलन देखी ॥

५—उपालंभ—

[१]

कहाँ तक रक्खूं प्यारे ! धीर, दिखाती नहीं तुम्हारी आश,
प्रतीक्षा करते २ हाय ! अंतको होना पड़ा हताश ।

कहा था 'आऊँगा' पर नाथ ! नहीं आए तुम मेरे पास—
कहो क्या यही तुम्हारा नेह ? प्रणयका बदला देना त्रास !

[२]

दिखाते उसे त्रास हे देव ! जिसे हो अपने बलका गर्व,
यहाँतो निर्बल दुखिया दीन, चाहते किसको करना खर्व ।
'दयामय' नाम धराकर देव ! लजाया नाहक इसको नाथ !
तुम्हारा अश्रय लेकर नाथ ! विश्वमें होऊँ हाय ! अनाथ !!

६-उलहना—

दयामय ! तुमको कैसे पाऊँ ?
खोजौं जाय कहाँ मैं स्वामी ! क्यों कर मन समझाऊँ ?
द्रुपद-सुताको करुणा-क्रंदन सुनतहिं नेह निभायो ।
विनसि सुयोधन मान, सभामें द्रौपदि चीर बढ़ायो ।
गजको आरतनाद सुन्यो जब, चढ़ि गरुड़ासन धाये;
ग्राह मारि करुणानिधि ! सत्वर, गजके प्राण बचाये ।
अधम अजामिल गणिकाहूकों, प्रभु अंगीकृत कीन्हों,
आमिप भोजी अधम गृद्ध हूँ कों अपनो पद दीन्हों ।
कारण कौन तिहारो सेवक, मैं अनेक दुख पाऊँ ?
हो अनाथकी भाँति व्यथित निज जीवन नाथ ! बिताऊँ ?

७—आजा ।

आजा मोहन ! आजा रे !

[१]

लीलामय ! लीला दिखलाजा,
शुभ गीताका ज्ञान सुनाजा ।

कर्मवीर बनना बतलाजा,
—वीणाध्वनी सुनाजारे।
आजा मोहन! आजा रे॥

[२]

अभिमानीका मान घटाजा,
निरंकुशोंकी शान घटाजा।
विमल ज्ञानभंडार लुटाजा—
प्रेम-पियूष पिलाजा रे—
हे मनमोहन आजारे!॥

[३]

भारतको स्वातंत्र्य दिलाजा,
दास-प्रथाका अंत कराजा।
मातृभूमिको धीरज देकर,
कुछतो दुःख मिटाजारे!
आजा० ॥

[४]

भीख मागना भारत छोड़े,
पापकर्मसे मुखको मोड़े।
सत्यधर्मसे नाता जोड़े,
जीवनजोति जगाजारे!
आजा–मोहन०!

[५]

गोकुल-वृन्दावनमें आकर,
दधिमाखनका चोर कहाकर

दूध-दहीका श्रोत बहाकर,
ऊधम फेर मचाजा रे !
आजा० ॥

[६]

वह प्राचीन उमंग नहीं है,
निर्मल प्रेम तरंग नहीं है ।
सच्चा सुख दिखता न कहीं है,
किंचित दया दिखा जा रे !
आजा०॥

[७]

मागें हम–' लक्ष्मी ' मत देना,
' यश–वैभव ' मागें–मतदेना ।
केवल मञ्जुल रूप दिखाकर,
किंचित हृदय जुड़ाजारे !
आजा०॥

[८]

माधव ! जो तूं नहिं आएगा,
इस प्रकार जो तरसाएगा ।
निश्चय ही तूं पछताएगा,
प्रणयी-नेह निभाजारे !
आजा–मोहन ! आजारे ॥

८–याचना

[१]

आनँदकंद तिहारे बिना अब एक घड़ी नहिं मोहिं सुहावै,
मोसम पामरकों किमि थाह सुनिर्मल प्रेम-पयोधिकी आवै ।

निर्बल दीन विहीन विलोकि, निरंतर क्यों तू हरे ! तरसावे,
'करुणा निधि'—नाम कहाइके मोसम, दीनन पै करुणा किन आवै।

[२]

सुख साधनसों परिपूरण देवनपै करुणा, प्रभु ! आप करो हो,
जिनके कुछ दुःख विषाद नहीं, तिनको हरि ! दुःख विषाद हरो हो।
जिनकों कछु वातकी चाह नहीं, तिनकी हरि ! आप जहाज भरौ हो,
चाहिये जो करिबेको दयानिधि, भूलिहु नाथ ! न वाहि करौ हो।

[३]

भावै तुम्हें प्रभु ! सोई करो, हमकों कछु बातकी चाह नहीं है,
यश-वैभव रूप वड़प्पनकी दुख औ सुखकी परवाह नहीं है।
परिपूरण नाथ ! जो आपकरो तो प्रभो ! बस एकहि आश यही है-
दीजिय भक्ति अनूप दयानिधि ! वेद पुरानन श्रेष्ठ कही है।

९—कहाँ हो ?

कहाँ हो-हे निराशकी आशा !

[१]

विघ्न—विपति परिपीड़ित तव जन,
क्षीण पुण्य, हत बुद्धि हीन मन;
निर्बल-दीन-मलीन छीन तन—
छाई हृदय निराशा,—
—कहाँ हो हे निराशकी आशा !

[२]

प्रणयी मन—दर्शन करनेको,
नयननीर— पदरज धोनेको.

यहजीवन—सुकृती होनेको—
उत्सुक है धर आशा—
कहाँहो हे निराशकी आशा !

[३]

घोर विपिनमें कलित कुंजमें,
नेह-कुसुममें मधुप पुंजमें,
नवल-नवेली अधर मंजुमें,
निर्मलनेह प्रकाशा—
कहाँहो हे निराशकी आशा !

[४]

मन मंदिरमें लेलेनेको,
सर्वस अर्पण कर देनेको,
नेह कुसुम तुमको देनेको—
प्रभो किये हूँ आशा—
कहाँ हो ? ०॥

[५]

इस प्रकार कबलों दुखदोगे ?
क्या २ और परीक्षा लोगे !
क्या सचमुच निर्दयी बनोगे ?
मेटो प्रेम-पिपासा—
कहाँ हो ? ०॥
यह माना मैं हूँ अतिपामर,
विषयी लोभी क्रूर अधम, पर—

अधमोद्धारकका हूँ अनुचर,
आओ मेरी आशा—
कहाँ हो० ? ॥

१०—कामना

[१]

श्रीपति ! माधव ! दीन-बन्धु ! प्रभु ! हे मुकुंद अंतर्यामी,
रावव श्रीहरि, हे सर्वेश्वर, नटनागर जगके स्वामी !
मंगलमय ! हे जगद्वंद्य ! जगदीश ! ईश गरुड़ागामी !
विश्वंभर ! हे अमोघदर्शन ! रामकृष्ण अगणितनामी !

[२]

प्रभो ! आप तो समदर्शी हैं, भेदभाव क्यों होता नाथ !,
भक्तोंको तो आप तारते, भली भाँति देते हैं साथ ।
पामर किसकी शरण तकें हरि ! निःसहाय हैं दुख पाते—
आश तिहारी ही करते हैं, आप नहीं क्यों अपनाते !

[३]

तज दो नाथ ! भले ही हमको, त्याज्य कभी हम दास नहीं,
हतभागी वह कौन भूमि है जहाँ आप हैं पास नहीं ?
हमें चाहिये नहीं विश्वकी कोई भी संपति भारी,
हमें चाहना है तो केवल—हों प्रभु-पदपर बलिहारी, ।

[४]

आओ नाथ ! शीघ्र दर्शन दो, दुखियोंका संताप हरो,
पुण्यभूमि भारतको फिरसे, धर्मपूर्ण निष्पाप करो ! ।
कर्मवीर हों सब संताने, नाथ ! तुम्हारा ध्यान धरें,
आत्मशक्तिसे विश्वप्रेमसे, धर्मपूर्ण आनंद करें ।

११-निहोरा

माधव ! एक वार तो आओ ।

[१]

दुखिया दीन—हृदय यह अनुचर;
कबसे खोज रहा है प्रभुवर !
कहाँ छिपेहो प्यारे गिरिधर !
इसे न अब बिलखाओ—
माधव ! एक वार तो आओ ॥

[२]

चलनेकी अब शक्ति नहीं है,
विषयोंमें अनुरक्ति नहीं है।
नहीं भरोसा और कहीं है,
प्रिय दर्शन दे जाओ।
माधव !०॥

[३]

मर जानेपर क्या आओगे ?
जीवन भर ही तरसाओगे !
सूखेपर जल बरसाओगे ?
व्यर्थ न हृदय जलाओ।
माधव !०॥

[४]

यहाँ कपटका काम नहीं है,
लालचका भी नाम नहीं है।

केवल प्रेम–परीक्षा लेलो—
आओ–प्रियतम ! आओ ।
माधव !०॥

[५]

माखन मिश्री कहाँसे लाऊँ,
मोहनभोग कहाँ मैं पाऊँ,
केवल नाथ ! सुदामाकेसे—
तंदुल आय चबाओ ।
माधव !०॥

[६]

बाल्यकाल क्रीड़ामें खोया,
युवा अवस्थामें विष बोया,
देख बुढ़ापेको हा ! रोया,
नाथ ! इसे अपनाओ ।
माधव !०॥

[७]

जीवन भर अपराध कमाया,
नहीं कभी सुखसे सो पाया ।
'हाय २' में तुम्हें भुलाया—
गीता ज्ञान सुनाओ ।
माधव !० ॥

[८]

धन-यौवनकी चाह नहीं है,
सुख-दुखकी परवाह नहीं है ।

लगन लगी है, नाथ ! तुम्हीपर—
—शुभ दर्शन दे जाओ ।
माधव ! एक बार तो आओ ।

१२–भक्तकी भावना—

[१]

हे लीलामय ! लीलास्थलकी ओर तनिकतो दृष्टि करो,
भूल गये क्या नाथ ! इसे हो प्रेमामृतकी वृष्टि करो ।
उदासीनता इस प्रकारकी देखी और न नाथ ! कहीं,
दिखा रहे जो आज दयामय ! रहस्य होता ज्ञात नहीं ।
दुख सहिष्णु करदो या स्वामी ! दुःखोंको निःशेष करो ।
अब न विलम्ब करो, दुखियाकी विपदाएँ सर्वेश ! हरो ।

[२]

तृष्णा रूप वारिमें स्वामी ! नारि भवँर है, मोह-तरङ्ग,
पुत्र-पौत्र जल जंतु भरे हैं, अगम उदधि है, पवन-अनंग ।
प्रभो ! डूबती हुई दासकी नौकाका पतवार धरो,
निजपद-प्रीति सहारा दे हरि ! दुखियाका उद्धार करो ।
अन्य नहीं तुमसा जगमें है, जो हरि ! मेरा त्राण करे ।
भव-बंधन परिताप मिटाकर, अनुपमेय कल्याण करे ।

[३]

नाथ ! वरद ! हे प्रणतपाल ! मत रखो भक्तिसे हीन इसे,
विस्मृत कर मायासे स्वामी ! करो न दुख दे छीन इसे ।
इन नश्वर विषयोंसे वंचित सदा कीजिये प्रभो ! इसे—
निजपद भक्ति अटल देकरके, अभय दीजिये विभो ! इसे—

रखे सदा विश्वास हृदयमें, प्रेम-उदधि में स्नान करे,
प्रभु-पद-प्रेमतरंगी होकर, लीलाका गुण गान करे ॥

[४]

भक्ति-सुधाको पान करे, हो हर्षित उसमें स्नान करे,
समझे धन्य स्वयंको स्वामी !, सादर यों आह्वान करे—
आओ हृदय विहारी माधव ! मम मन-मंदिर वास करो,
हृदय-कुञ्जमें वीणा-ध्वनिकर, दुर्भावोंका नाश करो ॥
हृदयस्थल पुनीत कर दो हरि ! निजजनका परिताप हरो ।'
माधव ! अब न विलम्ब करो कुछ, माया का संताप हरो ॥

[५]

तव मायासे मोहित हो हरि ! जान सका कुछ भेद नहीं,
की न भक्ति भी प्रभो ! आपकी, हुवा हृदयमें चेत नहीं ।
दवा लिया मायाने इतना ज्ञान शून्य मैं हुवा प्रभो !
धर्माधर्म विचार त्याग कर, धर्म-हीन मैं हुवा विभो !
आताहूँ अब शरण रावरी, जो कुछ भावै वही करो,
किन्तु विनय है यही एक बस, चरणोंसे मत दूर करो ॥

[६]

दुर्वलके वल प्रभो ! आप हैं अब न परीक्षा और करो,
योग्यायोग्य विचार त्याग हरि ! दुखियाको स्वीकार करो ।
करूं प्राण-मन प्रभो ! समर्पण, श्रीचरणोंमें सादर नाथ !,
हो प्रवृत्ति यह सदा दयामय ! बनूँ कृपा भाजन तव नाथ !
पाऊँ मोह-कराल कालसे, मायाधीश ! शीघ्र उद्धार—
शक्ति हीन हूँ शक्ति दीजिये, हो जाऊँ भवसागर पार ।

[७]

प्रभो ! रावरी कृपा रूप उस महा शक्ति का अभिलाषी—
हूँ, स्वामी ! मैं अचल भावसे करो प्रदान हृदयवासी !
दुखित जीवके दुःख विनाशक, हे त्रिताप हरने वाले !
मुकुलित हृदय कमलको स्वामी ! विकसित हो करनेवाले।
प्रेम-भावका श्रोत बहादो, धर्मपूर्ण अंतस्थलमें,
करता रहूँ, ध्यान प्रभुपदका, प्रेण पूर्ण हो पल २ में।

[८]

जीवों का परिताप मिटाने युग २ करते धारण देह,
देश पात्र अनुकूल प्रगट हो, प्राणि मात्रसे करते नेह।
दुष्टोंको निज धाम पठाते, भक्तोंको सुख देते आप,
धर्म प्रचार विश्वमें करते, और मिटा देते हैं पाप।
प्रभो ! समय वह आपहुँचा है, करनेको धरणीका त्राण-
नाथ ! विलम्ब न नेक करो अब, आओ सत्वर ही भगवान !

[९]

किस प्रकार मैं करूँ याचना परम सौख्यको पानेकी,
क्योंकर बात कहूँ प्रभु ! तुमसे, निज परिताप मिटानेकी।
मानव-जीवन दिया मुझे हरि ! किन्तु किया कुछ कर्म नहीं,
हिंसक जीव सदृश रहता हूँ, बनता है कुछ धर्म नहीं।
आत्म-शक्ति दे नाथ ! शीघ्र, सन्मार्ग मुझे बतला दीजे,
नरतनुको सार्थक कर पाऊँ, प्रभो ! सफल आशा कीजे॥

[१०]

आशा किये हुए था मनमें, कर देंगे श्रीहरि ! उद्धार,
पिंड छुड़ानेको मायासे, किया निहोरा बारंबार।

अवधि व्यतीत हुई तिस पर भी ली न आपने सुधि मेरी,
त्यागो मत इस भाँति दासको, करो न प्रभुवर ! अब देरी ।
आओ माधव ! इन नयनोंसे, तुम्हें देखलूं-प्यार करूँ,
हृदय बसो मेरे मन-मोहन ! अपना मैं उद्धार करूँ ।

[११]

हे नाथ ! अनेकों बार जन्म ले, भव सागरमें मैं आया,
विष-समान विषयादिक सुखका, भली भाँति अनुभव पाया ।
चंचल चपलाको पानेका अविश्रान्त उद्योग किया,
किन्तु न मैंने शुद्ध भावसे, उसकाभी उपयोग लिया ।
प्रभो ! रावरी मायासे मैं, दुखिया अब अकुलाया हूँ—
दयानिधान ! दया अब कीजे, शरण तुम्हारी आया हूँ ।

[१२]

नदी-प्रवाह-सदृश यौवनको, स्थिर करनेके लिये अनेक,
हूँ, उपाय कर चुका विविध विधि, किन्तु लाभप्रद हुवा न एक ।
लक्ष्मी-सुत-स्त्री स्वर्गसौख्यकी भी अभिलाषा मुझे नहीं,
पुरुषयोनिके नाशवान सुखकी भी आशा मुझे नहीं ।
अभिलाषा है यही छूट भव बंधनसे सत्वर जाऊँ,
दीनबन्धु ! हरि दया करो प्रभु ! पाद-पद्म-आश्रय पाऊँ ॥

[१३]

जीवन अपना व्यर्थ गवाँया, कभी किया सत्संग नहीं;
साधु-संत-प्रभुपद-सेवाकी आई मुझे उमंग नहीं ।
मायारूप पूतना स्तनमें विषयरूप विष भरे हुए,
पिला रही है हे करुणामय, मृतवत् मुझको किये हुए ।

हुवा जीर्ण मम नाथ ! कलेवर आया हूँ अब शरण हरे !
पूतनारि ! तुम बिन प्रभु ! मेरी रक्षा जगमें कौन करे ?

[१४]

जिसको मैंने सुख माना था, वही मुझे परिताप हुवा,
जिस मदमें मैं मत्त बना था, वही हाय ! संताप हुवा।
मिला न अविनाशी सुख स्वामी ! किया न आत्माका उद्धार,
अपना हित भी कर न सका, कुछ किया न परका भी उपकार।
यद्यपि हूँ अपराधी पामर, हूँ तथापि स्वामीका दास,
यह आशा मैं क्यों न करूं हरि ! रक्खोगे पायँनके पास।

[१५]

जिसके स्मर्ण मात्र करते ही, विपदाएँ सब टल जातीं,
जिसकी लेश कृपा होते ही, सभी सिद्धियाँ मिल जातीं।
छीन सुदामाके मुट्ठी भर तंदुल, उसे निहाल किया,
जूंठे बदरी फल खा करके, शबरीका उद्धार किया।
उसी दीन दुखियाके प्यारे ! निर्विकार अविनाशीको,
है प्रणाम अति प्रेम भावसे, नटवर घट २ वासीको।

[१६]

पाप मिटाना, धर्मथापना अतिप्यारा है जिसका काम,
प्रेमयुक्त उस जगत्पिताको, सादर बारंबार प्रणाम।
विश्वनाथ ! सर्वज्ञ हितैषी, समदर्शी सबके प्यारे !
प्रेमनिधे ! भगवान ! दयामय, निज भक्तोंके रखवारे।
आओ नाथ ! शीघ्र भारतका, सारा संकट दूर करो,
धर्म पूर्ण अविनाशी सुखसे, भारतको भरपूर करो॥

१३-उत्थान

[१]

नाथ ! हो भारतका उत्थान–
गिरे हुए हैं सदियोंसे हम, पाते क्लेश महान।
मन-मंदिरसे द्वेष हटादें, प्रेम भावका श्रोत बहादें,
शत्रुजनोंका त्वेष घटादे, भाव स्वदेशीके लहरादें।
करें शीघ्र उत्थान-नाथ हो भारत० ॥

[२]

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भाव से करें एकही ध्यान।
बिछुड़ोंको हम शीघ्र मिलादें, मुरझोंमें नव जोति जगादें,
दुखियोंका सब क्लेश मिटादें, दासप्रथाका अंत करादें।
चाहे हों बलिदान-नाथ ! हो० ॥

[३]

आत्मधर्म अरु सत्यपंथका मंत्र जपें धर ध्यान–
सहनशक्तिसे युद्ध चलावें, पराधीनसे मुक्त कहावें–
आत्म शक्तिसे जय हम पावें, पशुबल का अभिमान मिटावें;
करें देश कल्याण—
नाथ ! हो भारतका उत्थान।

[४]

तीस कोटिसे अधिक सुअन हम, फिर भी हो अपमान।
देश भक्तिका पाठ पढ़ादें, मातृभूमिका क्लेश मिटादें।
कर्मवीरता पुनः दिखादें, दुनियाँको हम यह सिखलादें–
सबका कर कल्याण-नाथ हो०

१४–हे मधुसूदन !

[१]

हे मधुसूदन ! पाप-पङ्कमें डूब गया मैं हतभागी,
पार नहीं है कष्टोंका अब, हुवा कलुपका अनुरागी।
मेरी सुधि लेनेवाला हरि ! छोड़ आपको अन्य नहीं,
प्रभुसा शरणागतवत्सल पा, क्यों जाऊँ मैं अन्य नहीं ?
हे मेरे आराध्यदेव ! भवसागरसे उद्धार करो,
संहार करो षट् रिपुओंका, दुखियाका बेड़ा पार करो।

[२]

जीवन–दीपक जोति दिनोदिन, हरे क्षीण होती जाती,
किन्तु नाथ ! तव कृपाकोरकी आश नहा है दिखलाती।
जावेगी जब सूख कृपी तब क्या हरि जल वर्षाओगे ?
निज जनको संतप्त देख क्या नाथ ! आप हर्षाओगे ?
प्रभो ! परीक्षा लेनेका अब समय रहा अवशेष नहीं,
केवल करुणा-दृष्टि करो हरि ! और चाहना लेश नहीं॥

१७–श्रीकृष्णजयन्ती—

[१]

जब होता है ह्रास धर्मका पाप-वृद्धि होती जाती–
पामर जनकी दुराचारिता जगतीमें बढ़ती जाती,
संत-धेनु, द्विज, देव, खलोंसे विविध यातनाएँ पाते,
निर्गुण निर्विकार जगदीश्वर सगुणरूप तब धर आते॥

[२]

निराकार हैं यद्यपि स्वामी, किन्तु ईश नटनागर हैं,
हैं निरीह विश्वंभर ईश्वर, अखिलेश्वर गुण-आगर हैं।

प्रभुकी आदि-मध्य-इतिं जगमें-नहीं किसीने है पाई,
मुक्तकंठसे निगमागमने भी है नेति २ गाई ॥

[३]

द्वापर युगके शेष कालमें दानव मनुज रूपधारी—
प्रभुभक्तों को लगे सताने देदे विपदाएँ भारी ।
धर्मी सिद्ध देवऋषि-मुनिजन, करैं यज्ञ सत्कर्म जहाँ,
दुर्मद क्रूर निशाचर सत्वर विघ्न अनेकों करैं तहाँ ॥

[४]

अत्याचार बढ़ा धरणीपर हुए निशाचर गण उन्मत्त,
धर्माधर्म विचार त्यागकर, पामरतामें हुए प्रवृत्त ।
यद्यपि नाममात्रके नृपथे, किन्तु प्रजा के भक्षक थे ॥
केवल स्वारथ-पूर्ति हेतुही बने हुए सब रक्षक थे ॥

[५]

अबलाएँ दुखभोग रहीथीं, उनके अत्याचारों से—
बसुंधराभी दबी हुईथी, नारकीय व्यवहारों से ।
अमर्याद होगया लोक था, करते सब थे मनमाना—
भोग-विलास आदिको ही था, जीवन-सुख सच्चा जाना ॥

[६]

पापी कंस, अघासुर, मुष्टिक, तृणावर्त से खल चाणूर—
द्विविद, प्रलंब, पूतना, केशी, धेनुक, वृषभासुर से क्रूर ।
वाणासुर, भौमासुर, पौंड्रक, जरासंध अत्याचारी—
करतेथे दौरात्म्य भयंकर भक्तोंको था दुख भारी ॥

[७]

हाहाकार मचा जब जगमें, ब्रह्मसनातन अविनाशी—
करने लगे विचार हृदयमें, विश्वंभर घट २ वासी ।

प्रगट योगमायाको हरिने, इस प्रकारसे कहा उसे—
जा व्रजमें तू शीघ्र जन्मले, नहीं ज्ञात हो भेद किसे ॥

[८]

हैं वसुदेव-देवकी वंदी, भोग रहे हैं दुख भारी—
छः बालक भी मार चुका है, अधम कंस अत्याचारी।
मैं भी आताहूँ मथुरामें, उनका संकट हरनेको—
असुरोंका विध्वंस शीघ्रकर, जगको निर्भय करनेको ॥

[९]

क्याही अनुपम थी वह रजनी, भाद्रमासकी अँधियारी—
था बुधवार अष्टमी तिथिमें, रोहिणि नखत सौख्यकारी।
प्रभुने ले अवतार कंसका वंदी-गृह था धन्य किया—
श्री वसुदेव—देवकीका दुख, प्रभुने छिनमें मेट दिया ॥

[१०]

कमल-नयन था मेघवर्ण, अति दिव्य मनोहर हरिका रूप,
उपमा जिसकी नहीं विश्वमें, मिलती है कोई तद्रूप।
शंख-चक्र अरु गदा पद्म युत दे शुभ दर्श मनोहारी—
दे आश्वासन भली भाँतिसे, बोले हरि बाणी प्यारी।

[११]

" तुम पर अत्याचार कंसने, विविध भाँतिसे सदा किये,
केवल मुझपर रखे भरोसा, आर्य ! सदा तुम सहा किये।
धैर्य धरो अवकुंठित मनको, लेशमात्र मत होने दो—
मनमाना व्यवहार कंसको, अपने पर कर लेने दो ॥"

[१२]

" पहुँचादो गोकुलमें मुझको नेक विलम्ब न होने दो—
कर लेनेदो चरित वहाँ भी, थोड़े दिन रह लेने दो।

नंद-यशोदाने मेरे हित, किया कठिन तप है प्यारे !
निशिवासर वे मन-मंदिर में, आस मिलनकी हैं धारे।

[१३]

"कंस मार फिर आन मिलूँगा, रखना अपने मनमें धीर,
मेरा ध्यान हृदयमें धरना, मिट जावेगी सारी पीर।"
यों कह हरिने बाल रूप धर, फैलाई अपनी माया—
मोहित हो दम्पतिने प्रभुको, पुत्र मानकर अपनाया॥

[१४]

बोले श्रीवसुदेव विकल हो, किस प्रकार गोकुल जाऊँ;
बंदीगृहमें पड़ा हुवा हूँ, कैसे सुतको पहुँचाऊँ !
इस प्रकार जब बचन कहे, तब जंजीरें सब टूट पड़ीं।
हुए अचेत तहाँके रक्षक, हथकड़ियाँ भी छूट पड़ीं।

[१५]

धन्यवाद दे जगतिपताको, सादर मनमें ध्यान किया,
हरिको पौढ़ा लिया सूपमें, गोकुलको प्रस्थान किया।
यमुनाजी भी बढ़ी हुई थीं—श्रीहरिने हुंकार किया—
हरिपद-चूम शीघ्र यमुनाने, जानेको तब मार्ग दिया।

[१६]

कन्या-प्रसव हुई यशुदाके, सुधि थी उसकी लेश नहीं।
'मोहशक्ति' की पूर्ण कृपासे रहा किसीको चेत नहीं।
उसी समय वसुदेव वहाँ जा पहुँचे दृश्य विलोक लिया।
सुला यशोदा-निकट कृष्णको, कन्या ले प्रस्थान किया।

[१७]

यमुना उतर पहुँच मथुरामें, आये श्रीवसुदेव वहाँ,
दीनबन्धु जगदीश कृष्णने जन्म लिया था स्वयं जहाँ।

इस प्रकार हरि गोकुल पहुँचे, किये अनेकों चरित पुनीत ।
धेनु चराई ग्वालसंगमें, खाया-बाँटा था नवनीत ॥

[१८]

असुरोंका संहार किया था, भक्तोंका दुख दूर किया—
अँगुरी पर गिरिधार इन्द्रका, माधवने मद चूर किया ।
श्री वसुदेव-देवकीका सब, संकट हरिने नाश किया,
मिटा अविद्या-अंधकारको, निर्मल ज्ञान प्रकाश किया ॥

[१९]

अत्याचारी कौरवगणसे, पांडव अति दुख पाते थे—
वे अनाथकी भाँति वनोंमें, जीवन सदा विताते थे ।
पांडव विजयी हुए समरमें माधवकी अनुकम्पासे ।
पार्थ-प्रतिज्ञा पूर्ण हुई थी प्रभु ही की अनुकम्पासे ॥

[२०]

नंदकिशोर ! कन्हैया ! माधव ! दीन-हीनके रखवारे ।
हे गोपाल ! यशोदानंदन, गिरिधारी ! श्रीहरि प्यारे !
प्रभो ! आपने जहाँ जन्म ले, पुण्य चरित था दिखलाया ।
दे गीताका ज्ञान पार्थको, कर्म मार्ग था वतलाया ॥

[२१]

हाय ! हरे ! वह आर्यवर्त्त यह, कर्महीन होता जाता,
प्रभो ! 'प्रतिज्ञा[१]' स्मरण करो अब अंत समय आता जाता ।
हे २ माधव ! शीघ्र हरो अब, विपदाएँ सब भारतकी—
लाज रखो स्वीकार करो हरि ! विनयभेंट है आरतकी ॥

१—'यदा यदाहि धर्मस्य०॥' आदि गीता ।

प्रभुका था अति भव्यरूप प्रिय मंगलमय सुखकारी—
महिमा जिनकी वर्णन करके, स्वयं भारती हारी ॥

[६]

बोले सब अति विनय भावसे, प्रभो ! दीन रखवारे !,
बहु विधि पीड़ा भोग रहे हैं, हम असुरोंके मारे।
त्राहि २ शरणागतवत्सल, भगवन! अंतर्यामी !
करो त्राण अब नाथ हमारा, प्रभुवर ! गरुडागामी ! ॥

[७]

अनाचार विध्वंसक स्वामी ! हे अनाथ रखवारे !
अद्वितीय हैं आप हरे ! जग विपति विनाशनहारे ! ।
जब २ भीर पड़ी भक्तों पर तब २ हो प्रभु ! धाये,
व्याकुल देख जननको स्वामी ! नेक विलम्ब न लाये ॥

[८]

आरत—नाद सुना जब हरिने, हुए द्रवित तब स्वामी,
बोले यों अति प्रेम-भावसे, कमल—नाथ सुखधामी ॥
'रखो हृदयमें धीर वेगही क्लेश विनाश करूंगा—
असुरोंका अवसादन करके वसुमतिभार हरूंगा ॥

[९]

प्रभुको जान प्रसन्न हृदयमें हुई प्रतीति सभीको—
लौटे निज २ गेह मुदित हो हुई सान्त्वना जीको।
प्रत्याशा प्रभु—शुभागमनकी, लगे हृदयमें करने,
लगे प्रभूका स्नेह भावसे ध्यान हृदयमें धरने ॥

[१०]

उमा-कुक्षिमें अंश रूपसे, कमलापति हरि आये ॥
यथा समयमें जन्म ग्रहणकर गणनायक कहलाये।

विद्याएँभी अल्प कालमें, सभी प्राप्तकर डालीं,
योगाभ्यास किया कुछ दिनमें सभी सिद्धियाँ पालीं।

[११]

अष्टसिद्धियोंसे परिणयकर, चले गणेश भवनको,
मिला गजासुर सैन्य सहित जब पथमें विघ्न करनको।
हुए कुपित हेरम्ब दैत्य पर, निज गण शीघ्र हँकारे,
पा अनुशासन निज २ आयुध सबने शीघ्र संभारे॥

[१२]

हुवा महासंग्राम रक्तके बहने लगे नद-नारे—
देख भयंकर मार गणोंकी, दैत्य हृदयमें हारे।
दिखलाने जब लगा पराक्रम, दैत्य गजासुर भारी।
भीषण युद्ध लगे तब करने, उससे फिर असुरारी॥

[१३]

हुवा अंतमें मल्लयुद्ध अति, दोनों वीर बलीमें,
गिरा अंतमें दैत्य गजासुर, पामर रणस्थलीमें।
अंकुशसे शिर फोड़ दैत्यका, जीवनान्तकर डाला,
मरते समय दैत्यने मुखसे, भीषण शब्द निकाला॥

[१४]

इस प्रकारसे हुवा नाश था दुखदाई असुरोंका,
दुखका अंत हुवा था जगमें, हरिजन और सुरोंका॥
शुद्ध भाद्रपद दिवस चतुर्थी था वह जग सुखकारी।
इसी हेतुही श्रीगणेशका तिथि महात्म्य है भारी॥

[१५]

हे भगवान्! हेरम्ब! गजानन शिव-सुतमंगलदाता,
विघ्न विनाशन, बुद्धि-प्रदायक, दीनबंधु जग-त्राता।

हे सर्वज्ञ ! देव लम्बोदर ! सादर विनय यही है—
करो कृपा अब शीघ्र विनायक पीड़ित मातृ-मही है ॥

[१६]

त्यागे अब कर्तव्य सभी हैं प्रभुवर ! हमने सारे,
दान-धर्म है नहीं दिखाता, निशिचर कलिके मारे ।
हरो अविद्या अंधकारको, निर्मल ज्ञान प्रकाशो,
हे गणनाथ ! दीन भारतकी, आपद शीघ्र विनाशो ॥

१७—दीपावली.

[१]

सुभगे ! स्वागत करें तुम्हारा, किस प्रकारसे आज यहाँ,
व्यथित हृदय हो रहा हमारा, है अतीतका साज कहाँ !
तुम्हें सुहाता राग-रंग है, छाया है परिताप यहाँ,
बनी दीपिकाएँ बंदूके, मचा हुवा संग्राम महाँ !

[२]

कलियुगमें आनंद मनानेका हमको अधिकार नहीं !
विना स्वतंत्र हुए क्या देवी ! मिल सक्ता आनंद कहीं !
स्वागत या सम्मान तुम्हारा, कर सक्ते पश्चिमवासी-
किस प्रकार सम्मान करैं तव पराधीन भारतवासी ?

[३]

निरपराध नेतागण बहुविधि, जेलोंमें दुख भोग रहे,
हा ! विछोह परिपीड़ित डर भी किस प्रकारसे सौख्य लहे ।
यहाँ दिवाला निकल चुका है लूट लिया सारा धन—धाम !
दमन-चमनकी धूम मची है—यहाँ हर्षका क्या है काम ।

[४]

माता बहिनें बिलख रही हैं, अश्रुधार हैं बरसातीं—
सुत-पति हीन हुईं अबलाएँ, निशिवासर हैं दुख पातीं।
हाहाकार मचा भारतमें, भूखों मरती हैं संतान—
देश विदेशोंमें जाती हैं कहीं न पाती हैं हा ! त्राण।

[५]

नर्क तुल्य इस दासदशासे जब लों हो उद्धार नहीं—
पराधीनता निशाचरीका जब लों हो संहार नहीं।
तब लों भारत किसी भाँति भी पा सक्ता है शांति नहीं।
विना स्वतंत्र हुए भारतकी मिट सक्ती है क्लांति कहीं ?

[६]

सत्य-अहिंसा-क्षमाधर्मको, जब सप्रेम अपनावेंगे—
पशुबल हिंसा-द्वेष दंभको जब हम दूर भगावेंगे।
विश्वप्रेम सद्भाव हृदयमें, हो प्रणवीर जमावेंगे।
बलिवेदीपर रामराज्यके लिये स्वयं चढ़ जावेंगे—

[७]

पापपूर्ण ये बने हुए सब दुर दुकूल बहावेंगे—
पहिर स्वदेशी खद्दरको ही हो स्वतंत्र हर्षावेंगे—
मुर्दोंमें भी आत्मशक्तिसे निर्मल जोति जगादेंगे—
शिल्पकला–व्यवसाय सभी में उत्तम तान बढ़ालेंगे—

[८]

जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त कर फिर आनंद मनालेंगे—
काट, दासता-पाश, देशको पूर्ण स्वतंत्र बनालेंगे—
नेताओंको बंदीगृहसे जब हम मुक्त करालेंगे—
सुभगे ! तब आनंदसहित सम्मान तुम्हारा करलेंगे ॥

३८—आऽह्वान

नाथ ! अब करौ न नेक विलम्ब ।
भवसागर विच विना तुम्हारे और न है अवलम्ब ।
भारत, विपति-समुद्र-मध्य हा ! डूबि रह्यो प्रभु ! धावौ—
करुणा-कोर सहारा दे हरि ! भयसों याहि बचावौ !
कहाँ स्वजनकी टेर सुनत ही, वाहन तजि २ धाये—
हमरी बार प्रभो ! केहि कारण—हौ अति विलम लगाये ।
विरुदावलि तव गाय, 'नेति' कहि निगमागम थकि जावें,
विषयी अधम मनुज हम कैसे थाह प्रभो ! तव पावें ।
चाहिय हमें न और सम्पदा, नाथ ! न हृदय डरावौ—
हम भूँखे तव कृपाकोरके आवो मोहन आवौ ॥

३९—कविता-कुञ्ज

१—विनय—

[१]

प्रबल प्रवाह बेगमें ज्यों तृण वहा चला जाता है,
त्यों प्रवृत्ति-धारामें तव जन, नाथ ! वहा जाता है ।
हरे ! दीन का हाथ गहोगे, या इसको छोड़ोगे !
शरणागत वत्सल होकर मुख, दुखियासे मोड़ोगे ?

[२]

निर्धनके सर्वस्व तुम्हीं हो, अन्त समयकी आशा,
है तव शरण अधम यह अनुचर, भक्ति सुधारसप्यासा ।
दीन बन्धु ! अपने आश्रयसे इसे न वंचित कीजे,
हृदय-कुंजमें हे मनमोहन ! आ प्रिय दर्शन दीजे ।

२—मंगल-कामना

[१]

दयाधाम ! अखिलेश ! दीन जनके प्रतिपालक,
आजित अजन्मा-अलख अगोचर, जग प्रतिपालक।
क्रूर-कुटिल-कुविचार प्रभृतिके अनुपम घातक,
सज्जन सेवक, साधु संत गो-द्विज प्रतिपालक।
करुणानिधि ! करुणा करो, जिससे बेड़ा पार हो,
इस दुर्गम भव सिंधुसे, हम सबका उद्धार हो॥

३—कुछ समस्या पूर्तियाँ

समस्या—" अवसर आयो है "

[१]

कठिन कराल काल-गति सों भई है दुरगति,
'परतंत्र' हाय ! भारत कहायो है,
देशमें विदेशमें मलीन हीन वेशमें हा !
दर २ भीख मागी—कन नहीं पायो है।
एहो जगदीश ! तुम यह तो बताओ हमें,
इन्हें क्लेश भोगनेकों भूपे उपजायो है ?
अधम उधारन जो सत्य हो अहो ! कृपालु !,
आओ अविलम्ब अब 'अवसर आयो है"।

[२]

धर्म उधरैया दीन दुःखके हरैया,
कलिकलुष नसैया, रघुनंद नाम पायो है,
दीन हीन पतित 'अछूत' भीलनीको जाय,
जूँठे बेर खाय रावरे जू अपनायो है।

मातापितु आयसु ले बंधु-पतिनीको साथ;
त्रिभुवननाथ ! वन-मंगल मनायो है ।
आओ रघुकुलचंद, आनँदके कंद,
यहि भारत उद्धारिवेको "अवसर आयो है"॥

समस्या-' छेद करे छातीमें '

[१]

शस्य श्यामला थी विश्ववाटिका थी एशियामें,
सोनेकी चिरैया विश्व बीच थी कहाती में ।
जन्मभूमि रामकी थी कर्मभूमि कृष्णकी थी,
'शिवा परतापसे थी सुत उपजातीमें;'
वीरतामें धीरतामें विज्ञता गँभीरतामें,
सबसों प्रथम, 'गुरुपद'को थी पातीमें,'
भई परतंत्र एरे काल तेरी दुष्टता सों,
छिन २ तेरी घात "छेद करे को छातीमें" ।

[२]

जबसों गये हैं सखि श्याम द्वारिकाको हाय !
एक छिन रैन दिन कल नहिं पाती मैं,
जानती कि घनश्याम कपट करैंगे ऐसो,
चाहे कछु होतो सखि ! उन सँग जाती मैं,
नित प्रति प्रात उठि आनँदसों प्रेम युत,
कृष्णके चरण चूमि, हृदय जुड़ाती मैं,
कहा करों कछु अब बस न चलत मेरो,
दिन रैन येही भाव 'छेद करें छातीमें' ।

समस्या-'प्रेमके पुजारी हैं'

जिसकी कृपाकी कोरसेही अल्प कालहीमें,
मिटते हैं पाप-परिताप भारी भारी हैं ।
जिसके अपार दया-दानसे वाचक वृंद !
रहते हैं जीव जड़ अमित सुखारी हैं ।
नित्य ही अनेक भाँतिसे जो पुत्र भावनासे,
करते हैं कामनाएँ पूरण हमारी हैं ।
ऐसे उन जगत पिताके प्रिय पुत्र हम,
नित्य प्रति प्रभु-पद-प्रेमके पुजारी हैं ॥

समस्या-'चंदकी'

जिसकी कृपाकी कोरसेही अल्प कालहीमें,
होती है प्रबल बुद्धि अति मतिमंद की ।
जिसके अशेष भव्य वैभवके साम्हने,
न होती है सफल कोई बात छल छंदकी ।
ऐसे करुणाके धाम रामको स्मरण कर,
न्हाइये वाचक वृंद ! धारामें आनंदकी,
प्रेमभावनासे एक बार बोल दीजिये तो—
'जय हो सीतापति राम रघुकुल'चंद' की ।

समस्या 'सार नहीं'

दुखिया दीन हृदय भारतके, दुःखोंका है पार नहीं ।
भूतलपर इसके पुत्रोंको मिलता नेक अधार नहीं ।
तीस कोटि संतानोंमें भी, हाय ! सपूत उदार नहीं ।
जो न सके कर त्राण देशका, धिक् जीवनमें सार नहीं ॥

४–विस्मृतिमें—

भूल चुका जालियाँ वालेका, क्या तू हत्याकांड स्वदेश !
भूल चुका नौकरशाहीका, क्या तू अत्याचार स्वदेश !
भूल चुका धन-धर्मनाशिनी, कुटिल नीतिका दुष्परिणाम ।
जो तू चुपकी साध पड़ा है, विस्मृत कर स्वदेश–हितकाम–
अकर्मण्य कायर हो करके मत बन तू कलंकभागी
किया हुवा प्रणपूर्ण शीघ्र कर, स्वावलम्बके अनुरागी !

५–नौकरशाहीसे—

दीन हीन निर्वल जनतापर, अत्याचार किया भारी,
लूट चुकी है देश-सम्पदा, विविध उपायों से सारी ।
दयाहीन नौकरशाही ! तू दुख देले–मनकी करले–
पशुबल अजमा ले मदान्ध हो, मनमानी सब कुछ करले ।
किन्तु स्वप्नमें भी क्या जनता, अब तुझको अपनावेगी ?
नौकरशाही ! फिर सचेत हो वरना फिर पछतावेगी ।

६–विश्वनाथ !

[१]

विश्वनाथ ! भारत संतानें, कबसे तुम्हें बुलाती हैं,
आरत नाद सुना न आपने प्रभो ! पुकार मचाती हैं !
निजजनका परिताप देखकर नेक विलम्ब न लाते थे,
आज कहाँ हो, जो दुखियों को देख, दौड़कर आते थे ।
आओ करुणा-कोर करो हरि ! दुखियों को तरसाओ मत,
विपति सिंधुसे शीघ्र उबारो, प्रभुवर ! देर लगाओ मत ।

[२]

विश्वपते ! देवाधिदेव ! करुणेश ! प्रभो ! हे सुखराशी !
जगद्वंद्य ! जनतापविनाशन ! अजित-अजन्मा गुणराशी !
निजमन व्यथित देख सत्वर हरि ! निर्मल सगुण रूपधारी
स्वीकृत प्रभो विनय यह कीजे, सुखस्वरूप हे असुरारी !
नाथ ! देशकी दशा देख अब, करुणाकोर शीघ्र कीजे,
आत्मशक्ति दे हमें दयामय ! निज पद-पद्म प्रीति दीजे ॥

[३]

श्रीकालिन्दी-कूल वही है, वही मनोरम है कानन,
गोकुल-वृन्दावनकी गलियाँ, नाथ ! वही है मनभावन ।
सुंदर सुखद वसंत वही है, कुसुमित वृक्ष मनोहारी ।
नाथ ! वही अति रम्य भूमि है, आर्यवर्त्तकी अति प्यारी ।
फिर क्यों बालकृष्ण ! रूठे हो, क्या सुधि आती आज नहीं ?
इसी लिये ?—नवनीत जहाँ पाते थे—मिलती छांछ नहीं !!

[४]

पराधीन सदियोंसे हैं हम, यद्यपि है कुछ पास नहीं,
तौ भी तव सम्मान करेंगे, जानो यह परिहास नहीं
यह लोभ नहीं, छलछिद्र नहीं, हरि ! आओ दर्शन दे जाओ,
एक बार फिर भारतभूको प्रभुवर ! पावन कर जाओ ।
प्रभु-पद रजके प्रेमी हैं हम, और कामना है न हमें,
भक्ति-सुधाके हम पिपासु हैं, और चाहना है न हमें ।

[५]

भारत-मुकुट हिमालय सोहत, विन्ध्य-मेखला राज रही,
गंगा-यमुनाकी जल धारा, वक्षःस्थलको साज रही ।

सागर चरण चूमि निशि-वासर, धन्य स्वयंको मान रहा,
लीलास्थल, जगदीश ! आपका, अखिल विश्व है जान रहा।
विपदाओंका वही बना है नाथ आज क्रीड़ा स्थल है।
आओ नाथ ! न देर करो अब, बीत रहा युग सम पल है।

[६]

कहाँ आप भक्तोंको दुखमें देख दौड़कर आते थे—
व्यथाविनाशन ! दुखियोंका परिताप समूल नसाते थे।
कहाँ आज हो आप दयामय ! क्यों हो धारण मौन किये ?
आते हो क्यों नहीं किनारा, किस कारण हो नाथ ! लिये ?
हाँ; समझा अब प्रभो ! परीक्षा आप ले रहे दासोंकी—
देख रहे कितनी दृढ़ता है, निजपद प्रेम-पिपासोंकी।

[७]

बाँधा ऊखल से जननी ने, उसे घसीटे हुए वहाँ—
जा पहुँचे तुम बालकृष्ण ! के यमलार्जुन तरु खड़े जहाँ
उद्धार किया था नाथ ! आपने, दोनों का तत्काल वहाँ,
क्रोधित होकर मुनि नारद ने उन्हें दिया था श्राप महा।
गोकुल वृंदावनकी गलियोंको गुंजित करनेवाले !
दिखलाते तुम आज नहीं क्यों ? भूमिभार हरनेवाले ! ॥

[८]

अभिमानी कौरवगण करने लगे पांडवोंको अति त्रस्त,
पांचों पांडव बन २ भट के, हुए यातनाओंसे व्यस्त।
अधम कौरवोंने अनुमाना पांडवगणको अस्सहाय,
बने सारथी आप, पार्थके, असहायोंके हुए सहाय।
चतुर सारथे ! आज हमारी बार मौन क्यों धारे हो ?
करो प्रतिज्ञा पूर्ण हरे ! जो प्रथम आप स्वीकारे हो।

[९]

जिन गौवों का नाथ ! आप करते थे निशिदिन प्रतिपालन,
वीणाध्वनि से उन्हें लुभाते, थे सप्रेम करते लालन।
था उसका परिणाम—यहाँ घृत-पयकी नदियाँ बहती थीं,
सर्व शक्तिसम्पन्न देशकी, संतानें भी होतीं थीं।
प्रभो स्वप्नवत् सभी होगया, गो-वध होता प्रति दिन नाथ !
अब गोपाल विलम्ब करो मत आओ मोहन ! दीनानाथ ! ॥

७—होलीकी उमंग

[१]

आ पहुँचा फागुनका महिना, उड़े बसंती फाग,
छने चकाचक ज्ञानसुधा अब, गावें सब मिल फाग।
—बन्धुगण कहो प्रेम से होली है।

[२]

सत्यधर्म सब त्याग चुके हैं, हुए कर्म से दूर,
हिंसा-द्वेष-घमँड आदि से भरे हुए भरपूर।
—खूब ही भरी फूट से झोली है।

[३]

सदियाँ बीत चुकीं सोतेही, हुवा न फिरभी ज्ञान,
भेदभावना रखे रहे हम, रहित आत्मसम्मान !
—हुई यह व्यर्थ ठठोली है।

[४]

छोड़ पुरातन रीति रिवाजें, सजे नये हैं साज,
हुवा ढोल की पोल सदृश ही, नूतन सारा काज।
—धन्य यह नूतन होली है।

[५]

होली सो होली अब भी तो उठो २ हे भ्रात !,
कर्मवीर हो ! कर्म करो अब, रखो सत्यसे नात ।
—यही शिक्षा अनमोली है ।

[६]

विद्या-कला-कुशलता सबमें, खूब बढ़ाओ ज्ञान,
करो देश-सेवा जीवन भर, हो जिससे उत्थान ।
—कहो फिर कैसी होली है ।

[७]

आत्मशक्तिको खूब बढ़ा लो करो ईश गुण-गान,
विमल हृदयसे देशभक्तिकी, छोड़ो सुंदर तान ।
—बन्धुओ ! कहो प्रेमसे होली है ।

८—अनुनय

[७]

आनँदके मदन ! जगत—हितकारी नाथ !
अवध—विहारी ! जन—विपति हरत हौ;
निर्बल अनाथनके एकही सहारे तुम,
निर्धनको छिन बीच धनिक करत हो ।
अंधनके नेत्र तुम, दीननके नाथ तुम,
पंगुहि चढ़ाओ शैल, ता कर गहत हौ ।
भारत, अनाथ—नाथ ! रावरी शरण गहि,
केहि मग भूल्यो सुधि काहे न धरत हौ ?॥

[२]

जा थल जनम हेत देवगण चाह करैं,
जा थलकी महिमा जगत माँझ व्यापी है ।

व्यापी है जगत वीच भारत कलादि विद्या,
देश २ वीच निज कीरति सुथापी है।
वेदँ-नखँ बार अवतार धरि रावरेजू,
भूमि-भार हरणके हेतु नाथ ! आये हो।
नटवर ! नर लीला कीन्ही है अनेक तुम,
हाय २ नाथ तेहि भारत ! भुलाये हो॥

[३]

कठिन-कराल काल गति सों भई है दुरगति
'परतंत्र' हाय ! भारत कहायो है।
देशमें विदेशमें मलीन हीन वेशमें हा !
दर २ भीख माँगी कन नहिं पायो है।
एहो जगदीश ! तुम यह तो बताओ हमें,
इन्हें क्लेश भोगने को भूपे उपजायो है !
अधम उधारन जो सत्य हो अहो कृपाल !
आओ अविलम्ब अब अवसर आयो है।

[४]

जो रह्यो रमाको धाम तहँपे दरीद्रताने
घर २ माँझ निज शासन जमायो है।
बार २ देस माँझ पात अकाल हाय !
कोटिक जननपर संकट ढहायो है।
दासताकी बेडिनमें भारत त्रिपति माझ
निरंकुश शासकने शासन जमायो है।
चलीत कुरीतिनने देशहिं तवाह कीन्हो,
कठिन कुचक्र सब देशमें घुमायो है॥

[५]

डारत विपति माँझ भाई निज भाईनको,
धर्म कर्म स्वारथमें विलग विहायो है।
स्वारथके हेतु नाथ! अधम करम नित,
करत न नेकु मन हाय! सकुचायो है॥
दीनन विचारे-दुखदारिद-दलननाथ! हाय!
दुख दारिद स्वदेश माँझ छायो है।
भीजिये तुपार नाथ! भारत विनीतियुत,
दीनबंधु! रावरी शरण तकि आयो है॥

'बनजायँ हम हितैषी'

[१]

शिक्षा-प्रभा दिखाकर अज्ञानतम मिटादें,
कर्त्तव्यको समझकर बनजायँ हम हितैषी।

[२]

निज जाति-देश हितमें प्रिय प्राण भी चढ़ादें,
आतंकको मिटाकर बन जायँ० ॥

[३]

दुखियोंके दर्द सारे निश्चय अशेष कर दें,
उनको गले लगाकर बन जायँ० ॥

[४]

सम्मुख विपत्तियोंको हम देख कर डरें ना,
उनको परास्त करके बन जायँ० ॥

[५]

वलहीनको सदा हम सच्चा सुसेव्य जाने-
उसको सबल बनाकर बनजायँ० ॥

[६]

हों कर्मवीर सच्चे सेवक सदा कहावें,
निजदेश-ऋण चुकाकर बन जा० ॥

[७]

निजदेश-बांधवोंको 'संदेश' यह सुनादें—
कर्मण्य बन खड़े हों-बन जायँ हम हितैषी ॥

विनीत-विनय ।

[१]

प्रभो ! हम भूल चुके सत्कर्म, निरंकुश बने धर्मको छोड़,
अधोगति हुई इसीसे आज, दिया सत्पथसे मुखको मोड़ ।
भुलाया वह अतीत आदर्श, मिला था जिससे 'गुरुपद' श्रेष्ठ,
न्याय विज्ञान कला चातुर्य, जहाँ था अनुपम और यथेष्ट ॥

[२]

हाय ! वेही भारतके पुत्र विश्वमें पाते हैं अपमान,
निहारो एक बार तो नाथ ! कहाँ हो आओ हे भगवान !।
कसे हैं जंजीरोंसे हाथ, पैरमें वेड़ी पड़ी हुई,
मुखोंमें ताले ठोंके हाय ! नाथ ! अनहोनी दशा हुई ।

[३]

कहाँ तो भक्तोंपर दुख देख जरा भी देर न करते थे,
त्याग गरुड़ासनको भी नाथ। स्वजनके दुखको हरते थे ।

कहाँ हम हतभागी संतान, तुम्हारी कृपा दृष्टिसे नाथ !
हुई हैं जगमें वंचित आज, प्रभो ! हमको भी करो सनाथ ।

[४]

काटदो दास्य-श्रृंखला देव ! दमनका कर दो अबतो अंत,
कर्मपथ कंटक कर दो दूर, देशमें छावे शांति अनंत ।
तत्पर रहें सदा सर्वेश, देश हित होनेको बलिदान,
करें हम वेद विहित शुभ कर्म, हमारा हो आदर्श महान ।

[५]

केनिया-फिजी-अफ्रिका देश, आदिमें पहुँचे छोड़ स्वदेश,
किन्तु तहँ पर भी मिली न शांति, वरन भीषणता हुई विशेष !
प्रभो ! भारतकी प्रिय संतान, जहाँ जातीं जगतीमें धाय—
वहाँ ही दिखते दृश्य विचित्र, दुःख घन घिर जाते हैं हाय !

[६]

वही है वृन्दावनका कुञ्ज, वही यमुनातट परम पवित्र,
दिखादो एक बार वह दृश्य, हृदयमें जो है चित्रित चित्र ।
कीजिये दया दृष्टि अब नाथ ! और अबकीजे नेक न देर ।
बिलखतीं भारतीय संतान, दयामय ! सुनिये इनकी टेर ।

'सेवककी अंतिम अभिलाषा'।

[१]

हृदयशून्य जनताके हितमें सर्वस अपना फूँक चुका,
हृदय-मेदिनीका आशा तरु, निरुत्साहसे सूख चुका ।
'जिद्दी' 'अनुभव शून्य' पदवियांभी अगणित मैंने पाईं,
कर्म मार्गमें मुझे अनेकों भीषण बाधाएँ आईं—

'विश्वासी' 'विश्वास-विनाशी' अगणित भाई मुझे मिले,
किन्तु बहुत कम संगी बनकर कंटक मगमें संग चले ।

[२]

आती हैं विपदाएँ भारी उनको मुझपर आनेदो,
क्रूर-कुटिल कुविचार पूर्णहो विपुल त्रास दिखनानेदो ।
मेरा सेवा धर्म लक्ष्य है, उस पर बलिहो जाने दो ।
नर्क यातनाओंसे बढ़कर, मुझपर संकट ढाने दो,
प्राण रहें-मत रहें, पड़ीहो जिस पथमें राखी मेरी—
देश-युवक निकले उस पथसे, प्रभो ! यही आशा मेरी ॥

नाथ !

जियें जहाँ लों सतत प्रभो ! हम देशभक्ति-व्रत धारें,
करें वही सत्कर्म, हरे ! हम, मातृभूमि-दुख टारें ॥
दृढ साहस, ध्रुव-धर्म-धीरता स्वार्थत्याग स्वीकारें,
जननी जन्मभूमि भारतपर, तन-मन धन न्यौछारें ॥

'संदेशके' पाठकोंसे विनम्र निवेदन।

———:०:———

इस पुस्तकके प्रुफोंको ध्यानसे देखते हुए भी दृष्टि दोषसे कई भूलें रह गई हैं। हम कुछेक अशुद्धियोंका संकेत यहाँ कर देते हैं। दो-चार भूलें बहुत बड़ी हैं जिन्हें सुधारना अत्यंत आवश्यक है। इनके सिवाय प्रेसकी छपाईमें कहीं २ मात्राएँ भी नहीं निकलीं उन्हें भी चतुर और उदार पाठक सुधारकर पढनेकी कृपा करें:—

पृष्ठ	कविता	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	५	२	हू	हूँ
२	१	५	भारतवष	भारतवर्ष
४ (कामना)	१	४	है	हैं
५	८	५	मुहँ	मुँह
८	५	२	जोंरा	जोरों
१०	१०	२	रहथे	रहेथे
१०	१२	१	हा	हो
१३		१	वीणाधनी	वीणाध्वनि
१४	४	६	विश्वम त्रटि	विश्वमें त्रुटि
१७	१०	७	विपत्तिया	वियत्तियाँ
१९	८	४	कमको	तुमको
२४	१	३	ह	है

—लेखक

प्रिंटर—एम. एन्. कुळकर्णी, कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए ठाकुरद्वार, मुंबई.